संतवाणी

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए-

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

दो शब्द

भद्र आत्माओ !

संसार में प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति का होना परमावश्यक है । नहीं तो संसार चल ही नहीं सकता । फिर भी सैनिक, सिपाही एवं संत को समाज में विशेष महत्त्व दिया जाता है क्योंकि सैनिक राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करता है, सिपाही कानून व्यवस्था तथा जनता के माल व जान की रक्षा करता है और सच्चा संत अपने तप, त्याग, उपदेशों तथा साहित्यसृजन के द्वारा समाज में नैतिक चरित्र के निर्माण का कार्य करता है । परन्तु त्यागी व तपस्वी संत वे कहलाते हैं तो मन, वचन और कर्म से एक होते हैं तथा जिनकी कथनी, करनी, चर्चा-चर्या और उच्चारण-आचरण में कोई अन्तर नहीं होता । ऐसे संत विरले ही होते हैं जिनमें अभिमान नाममात्र के लिये भी नहीं होता । ये समस्त प्राणियों को अपने आत्म तुल्य समझते हैं । श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी लिखते हैं–

जो हम को परमेसर उचिर है ।
ते सभ नरक कुंड महि परि हैं ।।
मो कौ दास तवन को जानो ।
या भेद न रच पछानो ।।
मैं हौं परम पुरख को दासा ।
देखत आयो जगत् तमासा ।। –विचित्र नाटक 6.32.33

संसार के जो व्यक्ति मुझे परमेश्वर कहते हैं वे सभी घोर नरक के अधिकारी होंगे । इस बात में रती भर भी संदेह नहीं । मुझे तो केवल उस परमेश्वर का दास समझो । मैं उस परमेश्वर का केवल दास हूँ । उसकी इच्छा से ही जगजीवन का तमाशा देखने के लिये आया हूँ ।

मैंने सैंकड़ों पुस्तकों के अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् ''संतवाणी'' नामक पुस्तक का सृजन किया है । इसमें भक्त कबीर, संत शिरोमणि तुलसीदास, भक्त सूरदास, मीरा प्रेम दीवानी, बाबा शेख फरीद, भक्त नाम देव, संत रविदास, भक्त पलटू साहिब, साईं बुल्लेशाह आदि अत्यंत लोकप्रिय संतों के अत्यंत महत्वपूर्ण वाणियों का संकलन कड़े परिश्रम एवं सच्ची लगन से किया है । इन संतों का साहित्यसृजन बिना अर्थ के

साधारण व्यक्तियों की समझ में नहीं आता। अतः मेरा ऐसा करने का मुख्य उद्देश्य यही है कि प्रस्तुत पुस्तक को साधारण व्यक्ति भी बड़ी आसानी से समझ सके। इन संतों का साहित्य आज के युग में अत्यंत प्रासंगिक है और पाठकगण इससे अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। अतः प्रिय पाठकों से मेरा निवेदन है कि वे प्रस्तुत पुस्तक के पुष्पों को पढ़ें एवं समझें और फिर झूमझूम कर आनन्दविभोर हो जाइए।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री जय किशन जी, रोशन लाल अग्रवाल, सत्यपाल मोदी, नरेश बंसल, सरदारी लाल धवन आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतज्ञता होगी। विशेषतः श्री जय किशन जी ने इस पुस्तक के संयोजन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 7.5.2017

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

निवेदन

आज के संदर्भ में धर्म की परिभाषा को अनेकों धर्माधिकारियों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। कहीं-कहीं तो वेद के मूल अर्थों को भी पीछे छोड़ दिया गया है। जबकि कहीं-कहीं साधु-संतों ने इस परिभाषा को वेद से ही जोड़े रखा है। वास्तव में धर्म परमात्मा की प्राप्ति का एक साधन है। सभी संतों-महात्माओं ने परमात्मा की प्राप्ति के साधनों को अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है। मुख्यतः संतों ने धर्म को चिन्हों से अलग रख कर अन्तःकरण से संबंधित माना है। सम्भवतः उन्होंने वेदों का अध्ययन तो नहीं किया परन्तु श्रुति के माध्यम से वेदों के मूल रहस्य को ही अपनी वाणियों में स्पष्ट रूप से प्रकट किया है।

संतों ने स्पष्ट किया है कि परमात्मा जीव के अन्तःकरण में निवास करता है। जीव के द्वारा किये गये कर्मों का साक्षी परमात्मा है। जीव कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में परतंत्र है। ईश्वर सभी जीवों को उनके किये कर्मों का फल देता है। वास्तव में ईश्वर एक स्वतंत्र सत्ता है और कोई भी उस शक्ति का अतिक्रमण नहीं कर सकता। जीवों द्वारा की गई पूजा-पाठ, प्रार्थना, भक्ति और प्रेम जीव को ईश्वर के समीप ले जाते हैं। इससे उन्हें ईश्वर का सानिध्य प्राप्त हो जाता है। फिर ईश्वर उन पर अनुकम्पा करते हैं और ज्ञान रूपी प्रकाश से परिपूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार जीव प्रयत्नपूर्वक अपने अन्तःकरण में ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है तथा मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। सभी संत-महात्मा इस तर्क से पूर्ण सहमत हैं।

अनेकों संतों ने तो यहाँ तक कहा है कि परमेश्वर ने हमें आदि काल से ही जो उपदेश दिया था उसी की पालना में हम सदा लगे रहते हैं। यही उपदेश अर्थात् वेदवाणी ही परम सत्य है जो हमें उस परम सत्य परमात्मा की ओर ले जाती है। वही जीव के हृदय को पवित्र करने वाली है। जैसे कबीरजी ने कहा—

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय।।

संत शिरोमणि तुलसीदास जी कहते हैं कि विधाता ने मनुष्य के ललाट पर जो कुछ लिख दिया है उसको देवता, दानव, मनुष्य आदि कोई भी नहीं

मिटा सकता। अर्थात् सब कुछ परमात्मा के वश में है। ''रामचरितमानस'' उनकी अनन्यतम रचना है जो कि विश्वप्रसिद्ध है। यद्यपि इसमें उन्होंने श्रीराम के गुणों का ही वर्णन किया है परन्तु वस्तुतः वे यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से परमात्मा का गुणगान ही करते दिखाई देते हैं।

लेखक ने इस पुस्तक में 10 संत महात्माओं की वाणी को प्रस्तुत किया है। जिन संतों का उन्होंने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है वे वास्तव में समाज के प्रतिष्ठित संतों में से एक हैं। तुलसीदास जी ने जहाँ श्रीराम पर लेखनी चलाई वहीं पर सूरदास तथा मीराँबाई आदि ने भी श्रीकृष्ण को अपनी रचनाओं में प्रतिष्ठित स्थान दिया है। इन सब ने वस्तुतः ईश्वर के गुणों को ही प्रकट किया है।

श्री धर्मपाल कपूर जी ने इन संतों पर लेखनी चला कर समाज में संतों के महत्त्व को और भी अधिक स्पष्ट किया है। इससे उनका यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आपने अनेकों पुस्तकों को लिख कर उन्हें अपने खर्चे पर छपवा कर निःशुल्क बाँटा है। वास्तव में आप समाज के एक क्रांतिकारी वीर हैं। आपने कभी भी अपनी प्रशंसा नहीं की। अतः आप आत्मश्लाघा से कोसों दूर रहे हैं। अत आपके बारे में यह उचित ही कहा जा सकता है–

औरों के सम्मान का रखता है जो ध्यान।

वह कदापि करता नहीं आत्मगुणगान।।

मैं ईश्वर से श्री धर्मपाल कपूर जी की दीर्घ आयु की कामना करता हूँ, ईश्वर उनको आरोग्यता प्रदान करे ताकि वह अधिक समय तक धार्मिक ग्रंथों का लेखन व प्रकाशन करते रहें। इससे बहुत लोग लाभान्वित होते हैं। मैं उनके इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

जय किशन
एम०ए० (हिन्दी)
म. नं. 76, गाँव. व डा. कोट,
जि. पंचकूला (हरियाणा)
मोबाइल : 9468340497

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 0-9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	भक्त कबीर दास	1
2.	संत शिरोमणि तुलसी दास	29
3.	भक्त सूरदास	47
4.	मीराँबाई प्रेम दिवानी	55
5.	बाबा शेख़ फ़रीद	61
6.	भक्त नाम देव	69
7.	गुरु रविदास	75
8.	संत दादू दयाल	83
9.	भक्त पलटू साहिब	91
10.	साईं बुल्लेशाह	99

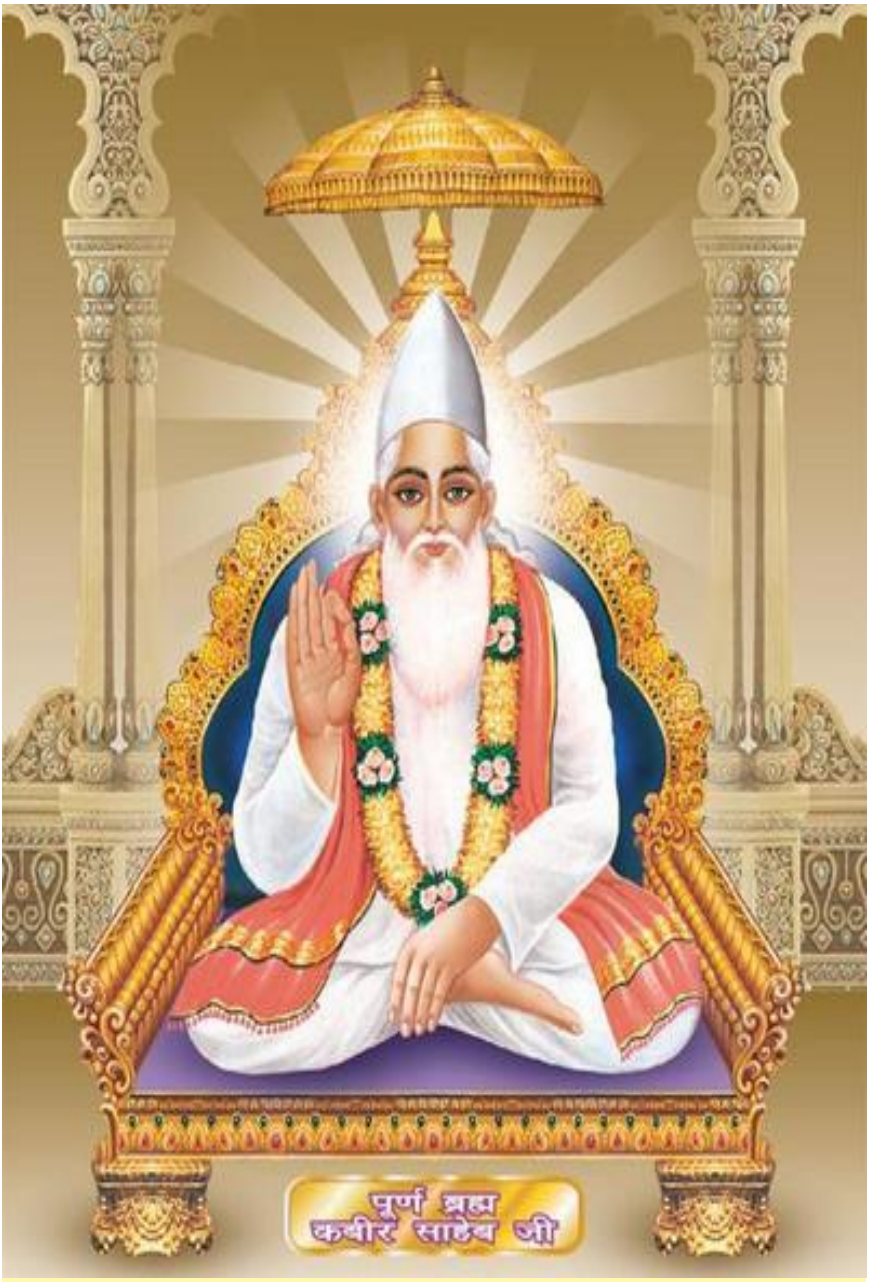

कबीर साहिब जी

जीवन-परिचय

1. भक्त कबीर दास

भक्त कबीर दास के जीवनवृत्त के विषय में मुड़े-मुड़े मतिर्भिन्ना की उक्ति चरितार्थ होती है और विभिन्न विद्वानों ने इस प्रसंग में पृथक्-पृथक् विचार व्यक्त किये हैं। परन्तु भक्त कबीर दास का जीवन काल साधारणतः 1398 ई० से 1518 ई० तक माना जाता है। कबीर के सारे काव्य का वर्णन ''बीजक'' नामक ग्रंथ में है जिसका संपादन उनके शिष्य धर्मदास ने किया था। ''बीजक'' के तीन भाग हैं—रमैनी, सब्द एवं साखी। यह पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है। ये परमात्मा को अपने मित्र, माता-पिता और पति के रूप में देखते हैं। यही तो मनुष्य के सर्वाधिक निकटतक संबंध है।

कबीर के काल में हिन्दु जनता पर मुस्लिमों का आतंक छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गई। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम जनता तक पहुँच सके। कबीर जो मुस्लिम संस्कृति और गोवध के विरोधी थे। वास्तव में उन्हें शांतिप्रिय जीवन ही प्रिय था। वे अहिंसा, सत्य और सदाचार के प्रशंसक थे। इन्हीं गुणों के कारण ही वे विदेशों में प्रसिद्ध हो गये। इनका पूरा जीवन काशी में ही गुजरा, लेकिन मरने के समय मगहर चले गये। कबीर का अनेक विद्वानों के साथ विचार-विनिमय भी हुआ करता था। एक साखी में उन्होंने कहा—

बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जाना।।

अर्थात् वन से भाग कर बहेलिये द्वारा खोदे गये गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किससे कहे। उसकी व्यथा को सुनने वाला कौन है? कबीर बाह्य आडम्बरों के कट्टर विरोधी थे। मूर्ति पूजा को वे एक अभिशाप मानते थे।

कबीर की काव्य कला की मुख्य विशेषतायें हैं—निर्गुण ईश्वर में विश्वास, गुरु गुणगान, ज्ञान द्वारा प्रभु प्राप्ति, धार्मिक अंधविश्वासों का

विरोध, सामाजिक आडम्बरों का खंडन, सांसारिक विषय वासनाओं की निन्दा, मानवता का प्रचार, रहस्यवाद, नारीचित्रण, रसनिरुपण और कबीर ने अपने काव्य में खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया ।

वस्तुतः कबीर उच्चकोटि के कवि थे, वे महान् थे । वे हिन्दू मुसलमान थे । वे अपढ़ विद्वान् थे । वे फक्कड़, अक्कड़, मसतमौला फकीर थे । वे पहुँचे हुये पीर थे । संत तो हज़ारों हुए हैं, परन्तु कबीर ऐसे हैं जैसे पूर्णिमा का चांद अद्‌भुत एवं अद्वितीय । जैसे अंधेरे में अचानक दिया जला दे—ऐसे हैं यह राम । जैसे मरुस्थल में कोई अचानक मरुद्यान प्रकट हो जाये, ऐसा है अद्‌भुत एवं अनुपम उनका काव्य । अतः तुलसीदास ने इसको विषय में उचित ही कहा है—

जननी जनै कै भक्तजन कै दाता कै सूर ।
नहि तो जननी बांझ रहे, काहै गंवावे नूर । ।

इसके अतिरिक्त डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है—

हिन्दी साहित्य के हज़ार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसे व्यक्ति से लेकर कोई भी लेखक उत्पन्न नहीं हुआ ।

संत कवियों में कबीर जी का व्यक्तित्व अद्वितीय है । उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे अपितु वे बोलते रहे और उनके शिष्यों द्वारा इनका संग्रह किया गया । एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं—

कागद मसि छुओ नहीं, कलम गहि नहिं हाथ ।

120 वर्ष की अवस्था में मगहर में कबीर जी का देहान्त हो गया । हिन्दी साहित्य में उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया । साहित्य में वे सदा के लिये अमर हो गये । उनकी वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी की उस समय में थी ।

1. भक्त कबीर दास

1. चितावनी

1. **कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस ।**
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ।।

कबीर जी कहते हैं कि व्यक्ति को किसी वस्तु का अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि मृत्यु ने प्रत्येक व्यक्ति के सिर के बाल पकड़े हुए हैं । उसे यह भी पता नहीं कि उस की मृत्यु घर में होगी या बाहर किसी अन्य के स्थान पर ।

2. **झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद ।**
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ।।

संसार के सारे सुख क्षण भंगूर हैं । परन्तु व्यक्ति उन सुखों के पीछे ही पागल हो रहा है । काल एक दिन सब को खा जायेगा । कुछ तो मृत्यु रूपी काल के मुख में हैं तथा कुछ पंजे में । अर्थात् काल के क्रूर फंदे से कोई भी नहीं बच सकता ।

3. **कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय ।**
जरा मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ।।

संसार के व्यक्ति जब एक दूसरे से मिलते हैं तो वे कुशल मंगल पूछते हैं । परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कुशल मंगल पूछते-पूछते आज तक संसार में कोई भी जीवित नहीं रहा है । यहाँ पर बुढ़ापे और मृत्यु का भय सदा बना रहता है । इस भय में वह कुशल कैसे रह सकता है ।

4. **पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।**
देखत ही छिपि जायगा, ज्यों तारा परभात ।।

मानव जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षण भंगूर है । एक दिन उसका जीवन देखते-देखते ऐसे समाप्त हो जायेगा जैसे सुबह का तारा छिप जाता है ।

5. **रात गँवाई सोइ करि, दिवस गँवायो खाय ।**
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ।।

व्यक्ति अपना अमूल्य जीवन रात को सो कर और दिन में खाकर व्यर्थ ही नष्ट कर देता है । इस प्रकार वह इस अमूल्य जीवन को कौड़ियों के भाव में व्यर्थ ही नष्ट कर देता है ।

6. **कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अबास ।**
कान्ह परों भइँ लेटना, ऊपर जमसीं घास ।।

कबीर जी कहते हैं कि व्यक्ति को बड़ा महल देख कर अभिमान नहीं करना चाहिये । क्योंकि मृत्यु के पश्चात् तो भूमि पर ही लेटना पड़ेगा और कुछ के पश्चात् उस पर भी घास पैदा हो जायेगी ।

7. **माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं ।**
इक दिन ऐसा हायेगा, मैं रूँदूँगी तोही ।।

माटी कुम्हार से कहती है कि भाई तूँ मुझे क्यों रूँध रहा है । एक दिन ऐसा आएगा कि मैं तुझे रूँधूगी । अर्थात् मृत्यु के उपरांत तेरा भौतिक शरीर मिट्टी में ही मिल जायेगा ।

8. **यह ताना काँचा कुभ है, लिये फिरै था साथ ।**
टपका लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ।।

यह मानव शरीर कच्ची मिट्टी के घड़े के समान है जिस को मानव जीवन भर अपने साथ लेकर फिरता है । एक दिन एक ठोकर लग कर फूट जायेगा और तेरे हाथ कुछ भी नहीं आयेगा ।

9. **कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार ।**
एक दिन है सोवना, लम्बे पाँव पसार ।।

कबीर जी कहते हैं कि हे मानव ! तू सोकर क्या करेगा ? उठ कर प्रभु के नाम का जप कर । मृत्यु के पश्चात् फिर तुझे सोना ही सोना है और फिर कभी जाग भी नहीं पायेगा ।

10. **इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं ।**
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ।।

एक दिन ऐसा आयेगा कि कोई भी किसी का साथ न देगा । तुझे यहाँ से अकेला ही जाना पड़ेगा । घर की नारी की तो बात ही क्या तेरी तन की नाड़ी भी तेरा साथ न देगी ।

11. **मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारंबार ।**
तरवर से पता झरै, बहुरि न लागै डार ।।

मानव जीवन बहुत ही दुर्लभ है और यह बारंबार नहीं मिलता है । 84 लाख योनियों में मानव जीवन श्रेष्ठ है । जैसे वृक्ष से यदि एक बार पत्ता अलग हो जाता है तो वह दोबारा वृक्ष पर नहीं लग सकता ।

2. प्रेम

12. **पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय ।**
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ।।

पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते सारा संसार चल बसा परन्तु वास्तव में कोई भी पंडित नहीं हुआ । परन्तु इसके विपरीत जिस व्यक्ति ने ढाई अक्षर के प्रेम का पाठ पढ़ लिया वही पंडित बन गया । जिसने अपने जीवन में प्रभु-प्रेम और मानवता के प्रति प्रेमभावना भर ली हो वही पंडित कहलाता है ।

13. **यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।**
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठे घर माहिं ।।

प्रेम पथ कोई खाला जी घर नहीं है । जो व्यक्ति अपना शीश उतार कर भूमि पर रख दे वही प्रेम के घर में रह सकता है । वही प्रेम कर सकता है क्योंकि प्रेम में देना ही देना होता है । अतः प्रेम करना अत्यंत कठिन है ।

14. **प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।**
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ।।

प्रेम न तो खेतों में उत्पन्न होता है और न ही किसी दुकान पर बिकता है । राजा हो अथवा प्रजा हो जो अपना शीश कुर्बान करता है वही प्रेम को पाता है । अर्थात् प्रेम कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे धन से खरीदा जा सके ।

15. **छिनहिं चढ़ छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय ।**
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ।।

जो प्रेम क्षण में हो जाये और क्षण में ही उतर जाये उसे प्रेम नहीं कहा जाता है । परन्तु इसके विपरीत जो स्थायी प्रेम शरीर रूपी पिंजरे में रहता है वस्तुतः वही सच्चा प्रेम कहलाता है ।

16. **जब मैं था तब तू नहीं, अब तू हैं मैं नाहिं ।**
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ।।

जब मेरे हृदय में अहंकार था तब मेरे हृदय में प्रभु नहीं थे । अब मेरे हृदय में प्रभु निवास करते हैं अतः अहंकार नष्ट हो गया । सत्य ही कहा है कि प्रेम रूपी गली अत्यंत संकीर्ण है जिसमें दो नहीं समा सकते । अर्थात् प्रेम के आगे अहंकार शून्य हो जाता है ।

17. **जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानु मसान ।**
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान ।।

जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम नहीं होता वह तो श्मशान के बराबर होता है । ऐसे व्यक्ति की तुलना लोहार की खाल से की गई है जो बिना प्राण के हवा विसर्जित करती रहती है ।

18. **प्रेम तो ऐसा कीजिए, जैसे चन्द चकोर ।**
घींच टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर ।।

भक्त को सदैव परमात्मा के साथ ऐसा प्रेम करना चाहिए जैसे चकोर और चन्द्रमा में होता है । यदि चकोर की गर्दन टूट कर पृथ्वी पर पड़ जाए तो भी वह चन्द्रमा की निहारती है ।

19. **प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय ।**
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ।।

सच्चा प्रेम छिपाने से नहीं छिपता है वह तो हृदय से प्रकट हो ही जाता है । यदि व्यक्ति अपने मुंह से उसे प्रकट नहीं करता तो वह प्रेम तो नेत्रों से भी प्रकट हो जाता है ।

20. **पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान ।**
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ।।

यदि कोई भी व्यक्ति प्रेम रस को पीना चाहता है और साथ ही सम्मान भी रखना चाहता है । परन्तु यह सम्भव नहीं है जैसे एक म्यान में तलवारे नहीं आ सकती है उसी प्रकार प्रेम व सम्मान एक साथ नहीं रह सकते ।

21. **गुनवंता औ द्रब्य की, प्रीति करै सब कोय ।**
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तें न्यारी होय ।।

गुणवान और धनवान व्यक्ति के साथ प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु प्रेम करता है । परन्तु कबीर जी कहते हैं कि सच्चा प्रेम तो इससे अलग एवं स्वार्थपूर्ति से ऊपर उठ कर होता है ।

3. मन

22. **मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक ।**
जो मन पर असवार है, सो साधू कोई एक ।।

व्यक्ति को मन के अनुसार नहीं चलना चाहिये क्यों मन में सदा अनेक विचार आते रहते हैं और इसको संकल्प-विकल्प होता रहता है । परन्तु सच्चा साधु वही होता है जिसका अपने मन पर नियंत्रण होता है ।

23. **कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय ।**
भावै प्रभु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ।।

व्यक्ति का मन तो एक ही है उसे एक समय एक ही स्थान पर लगाया जा सकता है। चाहे उसे प्रभुभक्ति में लगा लें अथवा उसे विषय विकारों में लगा लें। अतः यह व्यक्ति की इच्छा पर आधारित है।

24. **पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।**
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात।।

पहले यह मन कब्बे के समान था जो जीवन भर बुराई की ओर ही चलता रहा। परन्तु अब प्रभुकृपा से यह मन हंस की भाँति बन गया है जो मोती चुग-चुग कर खा रहा है अर्थात् सांसारिक कार्यों में से अच्छाई को चुन रहा है।

25. **कबीर मन मैला भया, या में बहुत विकार।**
यह मन कैसे धोइये, साधो करो विचार।।

कबीर जी कहते हैं कि मेरा मन मैला हो गया है। अर्थात् विषय-विकारों की ओर भागने लगा है। इसलिए हे सज्जनो! आप विचार करें कि मैं कैसे अपने मन को निर्मल बना सकूँ अर्थात् अपने वश में करके सात्विक कार्यों में लगा सकूँ।

26. **मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय।**
एकै रंग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय।।

मन के बहुत से रंग हैं। अर्थात् मन में अनेकों अच्छे और बुरे विचार चलते रहते हैं। परन्तु जिस का मन संयमित हो गया हो तथा मन में सद्विचारों का उद्भव होने लगा हो ऐसा व्यक्ति अत्यंत दुर्लभ है।

27. **मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।**
कह कबीर पिउ पाइये, मन हीं की परतीत।।

मन में हार मान लेने से व्यक्ति टूट जाता है। परन्तु यदि वह मन में संकल्प कर ले तो कार्य को करके छोड़ता है। अतः संकल्पमय मन के द्वारा वह अपने हृदय में परमेश्वर का साक्षात् भी कर सकता है।

28. **कबीरा मन निर्मलु भइया जैसा गंगा नीर ।**
पाछै लागै हरि फिरै कहत कबीर कबीर ।।

कबीर जी कहते हैं कि यदि किसी व्यक्ति का मन गंगा जल के समान निर्मल हो जाये तो उसे प्रभुसाक्षात्कार करने में कोई कठिनाई नहीं है । अतः मन की शुद्धता ही प्रभु भक्ति के लिये प्रथम सोपान है । अतः शुद्ध मन के द्वारा ही प्रभु भक्ति की जा सकती है । ऐसा भक्त महान् बन जाता है ।

4. विकार

29. **कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम ।**
कबीर का गुरु संत है, सन्तन का गुरु नाम ।।

कामी पुरुष सुन्दर स्त्री में ध्यान लगाते हैं तथा लोभी और लालची धन में ही अपना मन लगाते हैं । परन्तु कबीर जी तो संत पुरुषों को ही अपना गुरु मानते हैं । क्योंकि सच्चे संत पुरुषों का गुरु तो प्रभु का नाम ही है ।

30. **कामी कुत्ता तीस दिन, अंतर होय उदास ।**
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ।।

कामी व्यक्ति तो कुत्ते के समान होता है जो सदा विषयविकारों में लगा रहता है । इसलिये ज्ञानी पुरुष उसे कुत्ते के समान मानते हैं जो दिन प्रतिदिन काम वासना में लिप्त होते हुए भी उसकी काम वासना कभी तृप्त नहीं होती ।

31. **कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय ।**
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय ।।

कामी, क्रोधी और लोभी व्यक्ति कभी भी प्रभुभक्ति नहीं कर सकते । अर्थात् वे अपनी इन्द्रियों को कभी भी अपने वश में नहीं कर

सकते । परन्तु वह वीर पुरुष जो अपनी जाति एवं वश का त्याग कर देता है अथवा अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है तो वही भक्त कहलाता है । क्योंकि प्रभुभक्ति कोई बिछोना नहीं देखती और भूख स्वाद नहीं देखती ।

32. **कामी लज्जा ना करै, मन माहीं अहलाद ।**

नींद न माँगै साथरा, भूख न माँगै स्वाद ।।

कामी पुरुष कभी भी लज्जा नहीं करता अपितु काम वासना पर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है । इसी प्रकार जब व्यक्ति को नींद आती है तो वह गद्देदार स्थान को नहीं देखती और भूखा आदमी तो केवल पेट भरने पर ध्यान देता है स्वाद से उसका कोई भी अभिप्राय नहीं होता ।

33. **जहाँ काम तहँ नाम नहि, जहाँ नाम नहिं काम ।**

दोनों कबहूँ ना मिलै, रवि रजनी इक ठाम ।।

जहाँ काम वासना होती है वहाँ प्रभुनाम नहीं होता है और जहाँ प्रभुनाम होता है वहाँ काम वासना स्वतः ही नष्ट हो जाती है । ठीक उसी प्रकार से जैसे सूर्य और रात्रि एक साथ नहीं मिल सकते ।

34. **काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट में खान ।**

कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान ।।

जब तक व्यक्ति के हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि निवास करते हैं तब तक उसकी कोई भी उन्नति नहीं हो सकती । अर्थात् मूर्ख और पंडित में कोई अन्तर नहीं रहता । जब व्यक्ति इन पर अपना नियंत्रण कर लेता है तभी वह बुद्धिमान कहलाता है अन्यथा नहीं ।

35. **कुटिल वचन सबसे बुरा, जारि करै तन छार ।**

साध बचन जल रूप हैं, बरसै अमृत धार ।।

कटुवचन सब से बुरे और भयानक होते हैं ये व्यक्ति के शरीर और आत्मा को छलनी कर देते हैं । इसके विपरीत सत्यवाणी जल के

समान शीतल होती है जो सभी के हृदयों पर अपना प्रभुत्व जमा लेती है। वस्तुतः सत्य वाणी शांति और शीतलता प्रदान करने वाली है।

36. **आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।**
ये तीनों जब ही गये, जबहिं कहा कछु देह।।

व्यक्ति जब दूसरों से अपने लिए कुछ मांगता है तो उसका आदर-सम्मान और नेत्रों की लज्जा सब समाप्त हो जाती है। अतः किसी से अपने लिए याचना करना मृत्यु के समान है।

37. **कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।**
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह।।

स्वर्ण और स्त्री का छोड़ना फिर भी सहज है। परन्तु उससे अपना मान और प्रशंसा नहीं छोड़ी जाती। उसके हृदय की ईर्ष्या और द्वेष भावना भी नष्ट नहीं होती। अतः उसके लिए यह अत्यन्त कठिनदायक है।

38. **माया तजना सहज है मान तजा न जाय।**
पीर, पैग़म्बर, औलिया मान सभी को खाय।।

धन का त्याग तो व्यक्ति प्रयत्न से कर ही देता है परन्तु मान-सम्मान को तजना अत्यंत कठिन है। यहाँ तक कि सम्मान का त्याग तो धार्मिक नेता, अवतार और ऋषि भी नहीं कर सके।

39. **काला मुँह कर मान का, आदर लावौ आगि।**
मान बड़ाई छाड़ि के, रहौ नाम लौ लागि।।

अतः कबीर जी कहते हैं कि मान-सम्मान को छोड़ दो अथवा उसका मुँह काला कर दो, आदर भावना को मन से हटा दो। अतः इन अन्तर्विरोधों को छोड़ कर ही प्रभुनाम किया जा सकता है। तभी उसमें सफलता मिल सकती है।

40. **प्रभुता को सब कोउ भजै, प्रभु को भजै न कोय।**
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय।।

सत्ता को सब व्यक्ति भजते हैं, प्रभु को कोई भी नहीं भजता हैं परन्तु कबीर जी कहते हैं कि यदि व्यक्ति प्रभु को भजे तो सत्ता उसकी

शिष्या बन जाती है तो उसे प्रभु प्राप्ति होने पर प्रभुता स्वयं ही मिल जाती है अर्थात् आदर-सम्मान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है ।

5. नाम

41. कबीर सब जग निर्धना, धनबंता नहिं कोय ।
धनबंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय ।।

कबीर जी कहते हैं सारा संसार निर्धन है, कोई भी धनवान नहीं है । धनवान उसे ही समझना चाहिये जो सदा प्रभु स्मरण में लगा रहता है । अतः प्रभु की भक्ति ही जीव को महान् बना देती है ।

42. नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम ।
कंचन देह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम ।।

प्रभु का स्मरण करने वाला तो कोढ़ी भी अच्छा होता है जिसके रोम-रोग से प्रभु का नाम निकल रहा हो । इसके विपरीत सुन्दर और स्वच्छ काया किस काम की है जिसके मुख में राम का नाम नहीं है । अर्थात् प्रभुभक्ति से ही व्यक्ति में मानवता का उदय होता है ।

43. सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल राम रटाय ।।

सुख आने पर व्यक्ति परमात्मा के नाम को भूल जाता है अर्थात् उसका हृदय शून्य हो जाता है । इसलिए कबीर जी दुःख को विशेष महत्त्व देते हैं क्योंकि दुःख में व्यक्ति प्रभु का स्मरण करता रहता है । वह एक पल के लिए भी ईश्वर के ध्यान से विमुख नहीं होता । इसी से उसे आनन्द और शांति की प्राप्ति हो जाती है ।

44. लेने को सतनाम है देने को अन दान ।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ।।

व्यक्ति के जीवन में लेने के लिए प्रभुनाम है और देने के लिए अन्न है । अर्थात् प्रभुनाम से उसके हृदय में शील, संतोष और विनम्रता उभर कर आ जाती है । इसी से वह अपने अभिमान को भी जीत लेता है जोकि उसके पतन का कारण होता है ।

6. सुमिरन

45. दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ।।

दुःख में प्रत्येक व्यक्ति प्रभुनाम लेता है परन्तु सुख में कोई भी नहीं लेता । अतः यदि व्यक्ति सुख में भी प्रभुनाम ले ले तो उसे कभी भी दुःख प्राप्त नहीं होगा । प्रभुनाम से उसे आनन्द और आत्मबल प्रदान होता है । अतः प्रभुनाम हर समय लेना चाहिये ।

46. सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद ।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फिरियाद ।।

जो व्यक्ति उस परमात्मा का दुःख अथवा सुख में भी स्मरण नहीं करता तो परमात्मा उसकी पुकार कैसे सुनेंगे । अर्थात् उसके अन्दर सद्गुणों का आगमन कैसे हो सकता है ।

47. सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे कामी काम ।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम ।।

व्यक्ति को इस प्रकार से प्रभु की भक्ति में लग जाना चाहिए जैसे कामी पुरुष कामक्रीड़ा में सदा रत रहता है । एक पल के लिए भी उसे प्रभु से दूर नहीं होना चाहिये और आठों पहर, चौबीस घड़ी उसे प्रभु के ध्यान में व्यतीत करनी चाहिये ।

48. सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों सुरभी सुत माहिं ।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं ।।

परमात्मा का सुमिरन इस प्रकार से करना चाहिये जैसे गाय अपने नवजात शिशु का ध्यान रखती है । वह घास भी चरती रहती है तथा साथ में बछड़े का भी ध्यान रखती है । उसी प्रकार सभी कार्यों को करते हुए व्यक्ति को ईश्वर स्तुति, उपासना में सदा लगा रहना चाहिये ।

49. **सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे दाम कँगाल ।**
कह बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल ।।

परमात्मा का स्मरण इस प्रकार से करना चाहिए जैसे एक कंगाल धन का करता है । वह धन के विषय में इतना सावधान होता है कि उसे क्षण-क्षण में सम्भाल कर रखे बिना उसे चैन नहीं पड़ता ।

50. **सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन ।**
प्रान तजै पल बीछुरै, सत कबीर कहि दीन ।।

प्रत्येक व्यक्ति को प्रभुभक्ति में ऐसे तल्लीन हो जाना चाहिए जैसे पानी में मछली होती है । मछली अपने प्राण तो न्योछावर कर देती है परन्तु पानी से एक पल के लिए अलग नहीं होती है क्योंकि वह पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती है ।

51. **सुमिरन सुरति लगाई के, मुख तें कछू न बोल ।**
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ।।

प्रभुभक्ति के समय व्यक्ति को ध्यान लगा कर बैठ जाना चाहिये । उसके बाहर का द्वारा बंद हो जाए और मुख से कुछ भी न बोला जाये । इस प्रकार बाह्य आवरण से हटने के बाद अंतःकरण स्वतः ही शुद्ध हो जाता है और उससे प्रभुअनुभूति होने लगती है ।

52. **माला फेरत जुग गया, फिरा न मन का फेर ।**
कर का मनका डारि दे, मन का मन का फेर ।।

साधक का माला फेरते-फेरते युग व्यतीत हो गया फिर भी मन पर नियंत्रण नहीं हुआ । अतः उसे चाहिये कि कर का मनका छोड़ कर मन की शुद्धि के लिए मन पर नियंत्रण करे तो प्रभु का साक्षात्कार होगा ।

53. **माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं ।**
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ।।

व्यक्ति सुमिरन के समय माला तो हाथ में घुमाता है और मंत्र उच्चारण करता हुआ जीभ को मुँह में हिलाता रहता है । परन्तु इसी दौरान उसका मन अनेकों स्थानों पर घूमता रहता है । इसलिये यह

सच्चा सुमिरन नहीं कहलाता । व्यक्ति को तो वहीं होना चाहिये जहाँ उसका मन हो । एकाग्र मन से ही प्रभु भक्ति करनी चाहिये ।

54. **तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ ।**
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूँ । ।

कबीर जी कहते हैं कि हे ईश्वर तेरा स्मरण करते हुए मैं तेरे में समाहित हो गया । अर्थात् मेरा व्यक्तित्व ही समाप्त हो गया । इसलिए मैं तेरे नाम पर समर्पित होता हूँ । जिस ओर भी मैं देखता हूँ उस ओर प्रभु आप ही आप दिखाई दे रहे हैं । अब मेरा दृष्टिकोण प्रभुमय हो गया है ।

7. साध

55. **बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर ।**
परमारथ के कारने, साधन धरा सरीर । ।

वृक्ष कभी भी अपना फल नहीं खाते और नदी अपना पानी स्वयं नहीं पीती । इसी प्रकार संत भी परोपकार के लिये ही धरती पर अपना शरीर धारण करते हैं ।

56. **नहिं सीतल है चंन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय ।**
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय । ।

कबीर जी कहते हैं कि न तो चंद्रमा में इतनी शीतलता है और न ही हिम (बर्फ) में इतनी शीतलता है जितनी सज्जन पुरुषों के हृदय में होती है । अतः वे सभी से स्नेहपूर्वक मिलते हैं और सब ओर अपनी शीतलता बिखेरते हैं ।

57. **सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध ।**
कह कबीर वे कब मिलें, परम सनेही साध । ।

कबीर जी कहते हैं जो सत्पुरुष होते हैं वे सुख देते हैं और दुःखों को दूर कर देते हैं तथा व्यक्ति के अपराध भी क्षमा कर देते हैं । परन्तु ऐसे परम स्नेही पुरुष जो प्रभुभक्ति में सदा लगे रहते हैं उनका मिलना तो भाग्य से ही होता है ।

58. **साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।**
परमारथ राता रहै, बोलै वचन रसाल ।।

सच्चा संत वही होता है जो नीचे देख कर चलता है और दूसरों के कल्याण में सदा लगा रहता है । ऐसे संत पुरुष, प्रभुभक्त बड़े ही नम्र स्वभाव के होते हैं और सदा मृदु भाषा का प्रयोग करते हैं ।

59. **साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं ।**
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ।।

सच्चा प्रभुभक्त तो केवल भावनाओं का ही भूखा होता है । धन से उसका किसी भी प्रकार का संबंध नहीं होता । आज के युग में जो धन के लिये साधू के रूप में घूम रहे हैं वे वास्तव में न तो सच्चे संत ही हैं और न ही प्रभुभक्त ।

60. **धन्य सो माता सुन्दरी, जिन जाया साधू पूत ।**
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत ।।

वह माता धन्य होती है जिसने प्रभुभक्त पुत्र को जन्म दिया है । ऐसा व्यक्ति तो ईश्वर का नाम स्मरण करने से निर्भय हो जाता है । परन्तु इसके विपरीत जो संयम और शांति को प्राप्त नहीं कर सके उन का जीवन तो व्यर्थ ही चला जाता है ।

61. **तीरथ जाये एक फल, साध मिले फल चारि ।**
सतगुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर बिचारि ।।

तीर्थों में जाने से केवल एक ही फल प्राप्त होता है परन्तु आप्त पुरुष के मिलने से तो चार फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति हो जाती है । इसके विपरीत ईश्वर की प्राप्ति से तो स्वतः ही अनेकों फल प्राप्त हो जाते हैं ।

62. **साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सबद बिचार ।**
जग में होते साध नहिं, जरि मरता संसार ।।

सच्चा साधु जगत् में वृक्ष के समान होता है जो लोगों को अनेकों प्रकार के फल देता है । वे अपने सद्विचारों से समाज में शांति की

स्थापना कर देते हैं । यदि समाज में सच्चे संत न होते तो यह संसार अपने-आप ही जल मरता । अर्थात् लोगों स्वयं लड़-झगड़ कर नष्ट हो जाते ।

8. घट

63. **कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिं ।**
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिं ।।

कस्तूरी मृग की नाभि में स्थित होती है परन्तु मृग उसे बाहर ढूंढता रहता है । ठीक इसी प्रकार परमात्मा जगत् के कण-कण में निवास करता है । परन्तु मूर्ख लोग उसे पहचान नहीं हैं । अतः ईश्वर को अपने अन्तःकरण में ही पाया जा सकता है । उसे बाहर के तीर्थों में खोजना व्यर्थ है ।

64. **तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहपन में बास ।**
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि ढूँढै घास ।।

जैसे पुष्प में सुगन्ध रहती है उसी प्रकार परमात्मा जीव के अन्तःकरण में निवास करता है । जैसे मृग कस्तूरी की सुगन्ध का अनुभव करता हुआ इधर-उधर भटकता है उसी प्रकार मूर्ख लोग भी ईश्वर को भिन्न-भिन्न स्थानों पर ढूँढते फिरते हैं ।

65. **सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय ।**
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ।।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का निवास है ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जिस में परमात्मा का निवास न हो । परन्तु जो व्यक्ति अपने हृदय में उस परमात्मा को प्रकट कर लेता है वास्तव में वही व्यक्ति महान् होता है वही व्यक्ति प्रशंसनीय है ।

66. **भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बँध गई बेल ।**
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों तिल माहीं तेल ।।

हे मनुष्य ! तेरा ईश्वर तो तेरे हृदय देश में प्रतिष्ठित हो रहा है । तूं क्यों भूला बैठा है । मोह माया ने तुझे व्यसनी बना दिया है । जैसे

तिलों में तेल विद्यमान होता है उसी प्रकार ईश्वर भी इस जगत् के कण-कण में विद्यमान रहता है ।

67. **ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आगि ।**

तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि । ।

जैसे तिलों में तेल विद्यमान है और चकमक पत्थर में अग्नि विद्यमान है उसी प्रकार हे मनुष्य तेरा ईश्वर तेरे अंतःकरण में निवास करता है । अगर जान सकता है तो जान ले । योगाभ्यास के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है ।

9. संतोष

68. **चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवां बेपरवाह ।**

जिनको कछू न चाहिये, सोई साहंसाह । ।

जिस व्यक्ति के हृदय में इच्छा होती है वहीं चिन्ता भी विराजमान हो जाती है । इसलिये इच्छाओं का परित्याग करने से चिन्तायें भी स्वयं ही मिट जाती हैं । जब व्यक्ति निश्चिंत हो जाता है तो अपने हृदय में प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है । फिर वह मनुष्य साधारण मनुष्य न रह कर दिव्यात्मा बन जाता है ।

69. **गोधन, गजधन, बाजधन, और रतन धन खान ।**

जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान । ।

गाय, हाथी, घोड़े आदि अन्य रत्नों से व्यक्ति धनी कहलाता है तथा समाज में सम्मान पाता है । परन्तु यदि किसी व्यक्ति को संतोष रूपी धन प्राप्त हो जाता है तो अन्य सब धन संतोष रूपी धन के आगे शून्य हो जाते हैं । अतः संसार का सब से बड़ा धन संतोष धन है ।

70. **मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज ।**

परमारथ के कारने मोहिं न आवै लाज । ।

सज्जन पुरुष अपने लिये अथवा अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए कभी भी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते । परन्तु समाज की भलाई के लिये वे किसी भी कार्य को करने में हिचकिचाते नहीं ।

10. फुटकर

71. पतिबरता को सुख घना, जा के पति है एक ।
मन मैली बिभिचारिनी, ता के खसम अनेक ।।

पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा करते हुए कबीर जी कहते हैं कि ऐसी स्त्रियाँ संसार में आदर प्राप्त करती है जिनका केवल एक ही पति होता है । अथवा जो अपने पति के प्रति समर्पित होती है उसे ही पतिव्रता कहा गया है। ऐसी स्त्रियाँ सदा सुख भोगती हैं। इसके विपरीत व्याभिचारिणी अत्यन्त मलिन और शूद्रा होती है क्योंकि उसका अनेकों पुरुषों से अवैध संबंध होता है ।

72. पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप ।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ।।

पतिव्रता स्त्री चाहे कैसी भी हो सदा सम्मान पाती है । इसलिए कबीर जी कहते हैं कि पतिव्रता स्त्री गुणों की खान होती है तथा सबके लिए प्रशंसा के योग्य होती है ।

73. कामी क्रोधी लालची इन तें भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ।।

कबीर जी कहते हैं कि कामी, क्रोधी और लालची व्यकित कभी भी प्रभुभक्त नहीं बन सकता । अर्थात् प्रभु भक्ति में ये सदा बाधक बने रहते हैं । इसलिए प्रभुभक्त तो वही कहलाता है जो अपने कुल और वर्ण को भुला कर प्रभु के प्रति समर्पित हो जाता है ।

74. जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ।।

जैसे मछली को जल अत्यन्त प्रिय होता है वैसे ही लालची व्यक्ति को धन अधिक प्यारा होता है । जैसे माता को अपना पुत्र अत्यंत प्यारा होता है उसी प्रकार से प्रभुभक्तों को प्रभुनाम प्यारा होता है ।

75. सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ।।

कबीर जी कहते हैं कि सारा संसार खा-पीकर सो जाता है और सदा

आनन्द का अनुभव करता है । परन्तु प्रभुभक्त तो सदा प्रभुभक्ति में लगा रहता है और कष्ट भोगता रहता है । जब तक उसे प्रभु का सानिध्य प्राप्त नहीं होता तब तक वह दुःख भोगता रहता है । प्रभु को प्राप्त करने के बाद उसे किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती ।

76. संगति कीजै संत की, जिन का पूरा मन ।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन ।।

कबीर जी कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति की संगत करनी चाहिये जिस का मन प्रभुभक्ति में लग गया हो । ऐसा पुरुष ही दूसरों के लिये धन रुपी विद्या का प्रकाश बिना किसी माप दण्ड के कर दिया करता है ।

77. कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ।।

कबीर जी कहते हैं कि संत की संगत गंधी की गंध के समान होती है । यद्यपि गंधी कुछ भी नहीं देता तो भी उसकी गंध सर्वत्र बिखरती रहती है । उसी प्रकार संत भी सब पर अपना आशीर्वाद बनाए रखते हैं ।

78. राम बुलावा भेजया, दिया कबीरा रोय ।
जो सुख साधू संग में, सो वैकुंठ न होय ।।

प्रभु का निमंत्रण पा लेने पर कबीर जी अपने को चिंतित पा रहे हैं । उनका मत है कि जो सुख सज्जनों की संगत में है वह सुख स्वर्ग में भी नहीं ।

79. एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हू से आध ।
कबीर संगत साध की, कटे कोटि अपराध ।।

कबीर जी कहते हैं कि एक घड़ी अथवा आधी घड़ी से भी आधी घड़ी यदि सज्जनों की संगत कर ली जाए तो व्यक्ति के करोड़ों अपराध कट जाएंगे ।

80. कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंतें क्या होय ।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ।।

कबीर जी कहते हैं कि यदि मैं किसी कार्य की चिन्ता करूँ तो मेरी

चिंता करने से क्या होगा । मेरी चिंता तो प्रभु स्वयं करते हैं इसलिए मैं निश्चित हो गया हूँ ।

81. **सत्तनाम कड़वा लगै, मीठा लागै दाम ।**
दुबिध में दोऊ गये, माया मिली न राम ।।

प्रभुनाम तो कड़वा लगता है धन मीठा लगता है । इस प्रकार असमंजस की स्थिति में दोनों ही चले जाते हैं । न तो प्रभु से प्रेम हो पाता है और न ही धन मिल पाता है ।

82. **कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोय ।**
कथनी तजि करनी करै, तो विष से अमृत होय ।।

कहने में कोई जोर नहीं लगता परन्तु कार्य करने में तो अथक परिश्रम करना पड़ता है । इसलिए कबीर जी कहते हैं कि यदि कथनी छोड़ कर करनी कर ले तो विष से भी अमृत बन जाता है ।

83. **साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।**
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ।।

कबीर जी कहते हैं कि साधू को ऐसा होना चाहिये कि जो छाज की भाँति समस्त पदार्थों से सारतत्त्व को निकाल ले और शेष को छोड़ दे । केवल सार शब्द को ही ग्रहण कर लेना ही सज्जन पुरुषों का गुण है ।

84. **सबद बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल ।**
हीरा तो दामों मिलै, सबदहिँ मोल न तोल ।।

प्रभुनाम रूपी शब्द के समान इस संसार में कोई भी धन नहीं है । यदि कोई व्यक्ति इसका मोल जान जाये । हीरा जैसी अमूल्य वस्तु तो दाम में भी मिल जाती है । परन्तु नाम रूपी शब्द का कोई मोल नहीं ।

85. **जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय ।**
सार सबद जाने बिना कागा हंस न होय ।।

कबीर जी कहते हैं कि जंत्र मंत्र सब व्यर्थ हैं व्यक्ति व्यर्थ के मोह में फंसते जा रहे हैं । केवल सार शब्द जाने बिना कोई भी व्यक्ति ईश्वर

को प्राप्त नहीं कर सकता । अर्थात् साधारण व्यक्ति भी सार शब्द से बुद्धिमान बन जाता है ।

86. **मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार ।**
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ।।

मैं तो जन्म-जन्मांतर का अपराधी हूँ । अनेकों विकारों से मेरा रोम-रोम भरा पड़ा है । अर्थात् अनेकों अपराध मेरे द्वारा किये गये हैं । हे ईश्वर तुम तो दाता हो, दुःखों का हरण करने वाले हो, इसलिये मुझे क्षमा कर दो ।

87. **साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं ।**
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं ।।

कबीर जी कहते हैं कि हे ईश्वर आप अनन्त हो, गुणवान हो । आपमें कोई भी अवगुण नहीं है अर्थात् निर्दोष हो । जब मैं स्वयं को देखता हूँ तो मुझे अपने में अनेकों अवगुण दिखाई देते हैं ।

88. **दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय ।**
बिना जीव की स्वास से, लोह भसम ह्वै जाय ।।

कमजोर व्यक्ति को कभी नहीं सताना चाहिए, उसकी आहों बड़ी शक्तिशाली होती हैं । जिस प्रकार धोंकनी बिना श्वास लेते हुए भी लोहे को भस्म कर देती है । उसी प्रकार कमजोर व्यक्ति की आहें सबको जला कर भस्म कर देती हैं ।

89. **माँगन मरन समान है, मति कोई माँगी भीख ।**
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख ।।

किसी से माँगना मरने के समान है, इसलिए कभी भी भिक्षा नहीं माँगनी चाहिये । माँगने से मर जाना अच्छा होता है । बुद्धिमान पुरुष ऐसी ही शिक्षा देते हैं ।

90. **साहिब से सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं ।**
राई तें पर्वत करै, पर्वत राई नाइँ ।।

प्रत्येक कार्य की पूर्ति ईश्वर द्वारा ही होती है । व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता । परमात्मा क्षण भर में प्रलय कर देता है तथा उसी प्रकार पुनः जगत की रचना अपने सामर्थ्य से कर देता है ।

91. लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ।।

प्रभु इस जगत् के कण-कण में विद्यमान है । बुद्धिमान पुरुष उसे सब ओर देखते हैं । जीवात्मा जिस ओर भी देखना चाहती है उसी ओर उसे प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है ।

92. साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार ।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ।।

मालाओं को गले में धारण कर लेने मात्र से कोई भी व्यक्ति साधू नहीं बन सकता । बाह्य वेश धारण कर लेने मात्र से व्यक्ति पवित्र नहीं हो जाता । जब तब अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो जाता तब तक वह प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता ।

93. माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी के साथ ।।

गले में माला डालने और तिलक लगाने से भक्ति नहीं हो सकती । दाढ़ी मूछ कटवा लेने से और सांसारिक भोगों में लिप्त रहने पर भी उस ईश्वर को नहीं पाया जा सकता ।

94. मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँडाय ।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय ।।

बालों को कटवा लेने मात्र से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती । यदि ऐसा हो जाये तो सभी ईश्वर को प्राप्त हो जायें । जिस प्रकार बार-बार भेड़ के बाल काटने पर भी भेड़ स्वर्ग को नहीं जा सकती । अतः ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अन्तःकरण की शुद्धि अत्यावश्यक है ।

95. माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं ।
तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिं ।।

जो किसी से कुछ मांगने जाते हैं वे मरे हुए के समान हैं । अर्थात् जिन के पास कुछ भी नहीं वे ही मांगने जाते हैं । परन्तु उनसे पहले वे

लोग भी मरे हुए के समान हो जाते हैं जिनके पास वस्तु होते हुए भी देने से इनकार कर देते हैं ।

96. **जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तह पाप ।**
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ।।

जहाँ पर दया आदि गुण होते हैं वहीं पर धर्म होता है । जहाँ लोभ की वृत्ति होती है वही पर पाप पनपने लगता है । जहाँ क्रोध होता है वहीं पर मृत्यु होती है। जहाँ क्षमा आदि गुण आ जाते हैं वहीं पर परमेश्वर निवास करते हैं ।

97. **बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।**
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय ।।

जब व्यक्ति समरस होकर संसार में बुराई को देखता है तो उसे कोई भी बुरा नहीं दिखाई देता । जब वह अपने अंतःकरण में देखता है तो उसे लगता है कि उससे बुरा व्यक्ति इस संसार में और कोई नहीं है ।

98. **साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।**
जा के हिरदे साच हे, ता हिरदे गुरु आप ।।

संसार में सत्य के बराबर कोई तप नहीं है और असत्य के बराबर कोई भी पाप नहीं है । जिसके हृदय में सत्य का निवास हो जाता है वहाँ तो परमेश्वर का ही निवास होता है । अतः व्यक्ति को चाहिये कि वह सत्य की ही अनुकरण करे ।

99. **फूटी आँख बिबेक की, लखै न संत असंत ।**
जा के सँग दस बीस हैं, ता का नाम महंत ।।

जब व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है तो उसे सज्जन और असज्जन की पहचान नहीं होती । अतः व्यक्ति को अपने विवेक को बनाए रखना चाहिये । आज के समय में तो जिसके पीछे दस-बीस शिष्य होते हैं वे ही महंत कहलाने लग जाते हैं ।

100. **चलो चलों सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय ।**
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ।।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए सभी प्रयत्न करते हैं तथा उसे पाने का सभी

उपदेश भी करते हैं । परन्तु उस तक कोई विरला ही पहुँच पाता है । उस तक पहुँचने के लिए धन दौलत तथा काम वासना रूपी दो दुर्गम घाटियाँ हैं जिन्हें पार करना अत्यंत कठिन है ।

101. पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग ।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग । ।

यद्यपि पर स्त्री माता के समान होती है । परन्तु यदि कोई उसे पाना चाहे तो उसके लिए अत्यन्त घातक शस्त्र के समान होती है । इसलिए उसे कभी भी अपने अंग के साथ नहीं लगाना चाहिये । पर नारी के कारण ही रावण जैसे प्रकांड पंडित भी अपने दस सिरों को गंवा बैठे ।

102. बकरी पाती खात है, ता की काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खाते हैं जिन का कौन हवाल । ।

बकरी घास, पत्ते आदि खाती है । इस पर भी मरने के बाद उस की खाल उतार ली जाती है । जरा विचार कीजिये कि जो लोग बकरी को खाते हैं उनकी मरने के बाद क्या दशा होगी ? अर्थात् इससे भी बुरी दशा होगी ।

103. दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय ।
यह खून वह बन्दगी, कहु क्यों खुसी खुदाय । ।

मुसलमान भाई दिन में रोजा रखते हैं अर्थात् ईश्वर के नाम का व्रत रखते हैं और रात को गाय का क़त्ल करते हैं । एक ओर अत्याचार तथा दूसरी ओर व्रत इससे तो परमात्मा कभी खुश नहीं होगा । अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए जीवों पर दया करनी होगी ।

104. रूखा सूखा खाइ कै, ठंडा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव । ।

मनुष्य को अपनी नेक कमाई से रूखा-सूखा खा कर गुजारा कर लेना चाहिए । शीतल जल उसे शीतलत प्रदान कर देता है । परन्तु दूसरों के ऐश्वर्य को देख कर उसे अपनी ईमानदारी को नहीं छोड़ना चाहिये अपितु उस पर दृढ़ बना रहना चाहिये । यदि व्यक्ति ऐसा करेगा तो वह दुःखी होगा ।

105. मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान ।।

मनुष्य को सदाचार का पालन करते हुए अपने मन को मथुरा नगरी के समान, हृदय को द्वारिका के समान तथा काशी नगरी के समान अपने शरीर को जान लेना चाहिये । दस द्वार रूपी इस शरीर के विज्ञान को जान लेने पर ही इस शरीर में निवास करने वाली परम ज्योति के दर्शन वह कर पायेगा ।

106. भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक बिपरीत ।
कह कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत ।।

इस संसार में राजा भी दुःखी है और संन्यासी भी दुःखी है, निर्धन और धनवान भी दुःखी है । केवल वही व्यक्ति सुखी है जिसने अपने अन्तःकरण में प्रभु का साक्षात्कार कर लिया है अर्थात् अपने मन और इंद्रियों को जीत लिया है ।

107. देंह धरे का दंड है, सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ।।

शरीर धारण करने का ही परिणाम है कि व्यक्ति अपने कर्मों का दण्ड भोगता है । अर्थात् कर्म व्यवस्था के कारण ही जीव शरीर धारण करता है । विद्वान् लोग तो ज्ञान के कारण दुःख को सहर्ष भोग लेते हैं परन्तु अज्ञानी इस दुःख को कष्ट एवं अत्यंत पीड़ाप्रद समझ कर सहन करता है ।

108. साईं इतना दीजिये, जा मे कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय ।।

कबीर जी प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु ! मुझे बस इतना धन दीजिए जिसे मेरे परिवार और मेरा गुजारा हो जाए । इसके अतिरिक्त जो कोई साधु घर में पधारे वह भी भूखा न जाये । मैं उसकी सेवा भी कर सकूँ ।

109. कबीरा तेरी झोंपड़ी गलकटियन के पास ।
जो करनगे वो भरनगे तू क्यों भया उदास ।।

कबीर जी कहते हैं कि कसाइयों के पड़ोस में रहता हूँ । जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा वह अवश्य ही भागेगा । अतः उसके लिये कबीर को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है ।

110. चिंता कैसी ठागनी, काटे कलेजा खाये ।
बैध बिचारा का करे, दवा कहाँ से लाये ।।

चिन्ता बुरी बला है । यह ऐसी ठगनी है कि व्यक्ति का कलेजा काट कर खा जाती हैं अतः कहा जाता है कि चिन्ता चिता के समान होती है । डॉक्टर बेचारा इस पर क्या कर सकता है उसके पास भी चिन्ता को मिटाने की कोई दवा नहीं है ।

111. राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट ।
फिर पाछे पछताएगा, जब प्राण जाएंगे छूट ।।

कबीर जी विषयविकारों में आसक्त व्यक्ति को आदेश देते हुये कहते हैं कि प्रभुनाम की लूट मची है तो तू उसे भी लूट ले अर्थात् प्रभुनाम का सिमरण कर ले जोकि तेरे साथ जाएगा । परन्तु जब तेरे प्राण पखेरू उड़ जायेंगे फिर तू अवश्य ही पछताएगा ।

112. जोगी दुखिया जगम दुखिया, तपस्वी को दुःख दूना हो ।
कहे कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ।।

कबीर जी कहते हैं योगी, सांसारिक व्यक्ति और तपस्वी सब दुःखी हैं । सारा संसार किसी न किसी बात से दुःखी है । परन्तु सच्चा संत जिसने मन पर नियंत्रण कर लिया हो जो प्रभु की रजा में राजी हो वही सुखी है ।

113. न्हाये धोये क्या भला, जो मन मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहे धोये बास न जाय ।।

यदि व्यक्ति स्नान भी कर ले परन्तु मन का मैल न जाये तो उससे कोई लाभ नहीं है जैसे मछली सदा जल में रहती है परन्तु फिर भी उसकी बास नहीं जाते है । अतः मन शुद्ध से ही व्यक्ति पवित्र होता है ।

114. कबीरा पढ़ना छोड़िये, पुस्तक देओ बहाय ।
52 अक्षर छोड़के सतनाम लेओ अपनाय । ।

कबीर जी कहते हैं कि अनार्ष ग्रंथों को पढ़ना छोड़ दो और पुस्तकों को नदी में बहा दो । वर्णमाला के 52 अक्षर छोड़ कर प्रभुनाम को जीवन में धारण कर लो क्योंकि प्रभुनाम ही सत्य है और वही मत्यु के पश्चात् व्यक्ति के साथ जाता है ।

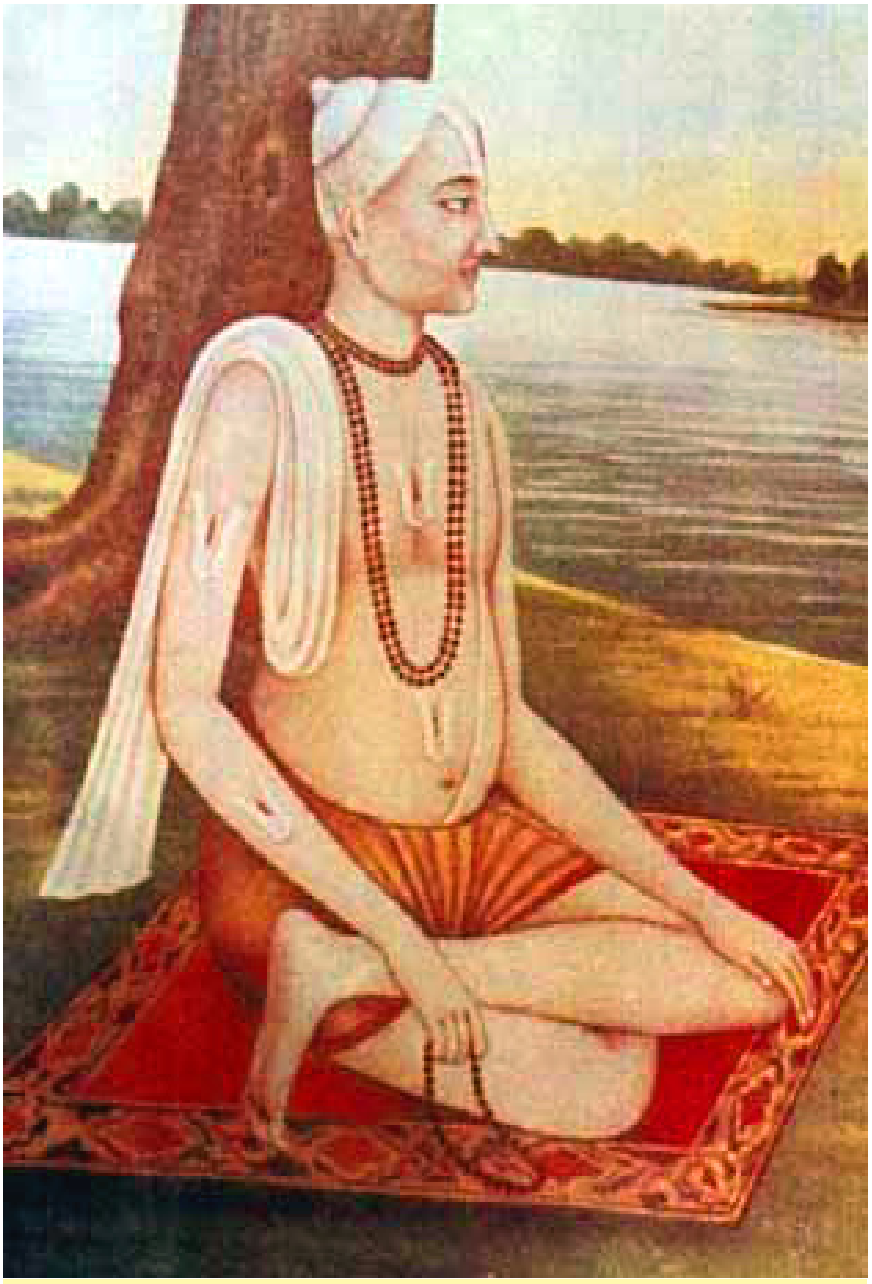

तुलसीदास जी

जीवन-परिचय

2. संत शिरोमणि तुलसीदास

कवि केसरी, हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोच्च कवि राम के अनन्य भक्त एवं राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि, लोकनायक, भारतीय संस्कृति के उन्नायक, भारत हृदय, भारती कंठ, माँ भारती के भव्य भास्कर, भक्त शिरोमणि, गोस्वामी तुलसीदास को कौन हिन्दी प्रेमी नहीं जानता? आपकी कीर्ति का आधारस्तम्भ ''रामचरितमानस'' महाकाव्य है जोकि हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। इसी कारण तुलसीदास जी को नामदास ने बुद्धदेव के पश्चात् सबसे बड़ा लोकनायक की उपाधि से विभूषित किया है। अतः एक आलोचक ने उचित ही कहा है–

वस्तुतः हिन्दी साहित्य में तुलसी का वही स्थान है जो उपवन में प्रथम पुष्प का, माला में प्रथम मनके का और आकाश में प्रथम नक्षत्र का होता है।

भक्तकालीन अन्य कवियों की भाँति तुलसीदास के जन्म एवं जन्म स्थान पर अभी तक प्रश्नवाचक चिह्न लगा हुआ है। परन्तु साधारणतः उनका जीवन काल 1497 ई० से 1623 ई० तक माना जाता है। उनके पिता का नाम आत्मा राम दूबे और माता का नाम हुलसी था। इनके बचपन का नाम रामबोला था। इनके माता-पिता का बचपन में ही निधन हो गया था। उनकी पत्नी का नाम रत्नावली था। विवाह के दो वर्ष उपरांत उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम तारापति रखा गया। परन्तु दुर्भाग्य से 2 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। इनके गुरु का नाम नरहरिदास जी था। गोसाईं जी काशी और अयोध्या में बहुत रहा करते थे। परन्तु मथुरा, वृंदावन, कुरुक्षेत्र, प्रयास, चित्रकूट, जगन्नाथ जी में भी भ्रमण किया करते थे। काशी जी में इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं। अयोध्या में रहकर इन्होंने विद्या अध्ययन किया। इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। एक बार जो गुरु के मुख से सुन लेते तो वह इन्हें कंठस्थ हो जाता। काशी में इन्होंने वेद-वेदांग का अध्ययन किया।

वस्तुतः तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनकी कीर्ति केवल भारत में ही नहीं, इंग्लैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि देशों में भी फैल चुकी

है। इनके 'रामचरितमानस' का अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हो चुका है।अतः प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेट स्मिथ ने अपनी पुस्तक ''महान् अकबर'' में लिखा है–

वह कवि हिन्दी-कविता-कानन में सब से बड़ा वृक्ष है। वे अपने समय में भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। यहाँ तक कि उन्हें अकबर से भी बड़ा कहा जाता है।

तुलसीदास की मुख्य रचनाएँ हैं–रामचरितमानस, विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली, जानकीमंगल, श्रीपार्वतीमंगल, वैराग्यसंदीपन, हनुमानबाहुक, गीतावली आदि है। रामचरितमानस इनका सबसे बड़ा और लोकमान्य ग्रंथ है। भारत में इसकी अब तक करोड़ों प्रतियाँ छप चुकी हैं। गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजा के महल तक प्रायः सभी घरों में 'रामचरितमानस' को देखा जा सकता है।

रामचरितमानस की रचना में इनकी मुख्य भावना भक्ति भावना ही थी। इसके अतिरिक्त राम को इष्टदेव मानना, समन्वय की भावना, रस निरुपण, काव्यशैलियाँ, भारतीय संस्कृति, मानस की अद्‌भुत देन, धार्मिक प्रचारक, समाज सुधारक, नारीचित्रण, अभिव्यक्ति सौंदर्य आदि इसकी मुख्य विशेषताएं हैं। समाज में वैष्णव और शैव में उत्पन्न हुई खाई को भी उन्होंने समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। निःसंदेह वे एक महान् कवि थे।

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि तुलसी दास ने राम काव्य को चरमसीमा पर पहुँचा दिया। अतः हरिऔध जी ने अपने श्रद्धासुमन यही कहकर चढ़ा दिये–

कविता करके तुलसी न लसे। कविता लसी पा तुलसी की कला।

2. संत शिरोमणि तुलसीदास

रामचरितमानस

1. बालकाण्ड

1. **बिनु सतसंग बिबेक न हाई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।**
सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।। –2.4.5
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ।।
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ।।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्रीराम जी की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में नहीं मिलता । सत्संगति आनन्द और कल्याण की जड़ है । सत्संग की सिद्धि ही फल है और सब साधन तो फूल हैं । दुष्ट भी संत्सगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है । परन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं, तो वे वहाँ भी साँप की मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं । (अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती । उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के संग में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।)

2. **जड़ चेतन गुन दोषमय क बिस्वीन्ह करतार ।**
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ।। दोहा-6

विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है । परन्तु संत रूपी हंस दोष रूपी जल को छोड़कर गुण रूपी दूध ही ग्रहण करते हैं ।

3. **आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ बासी ।।**
सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।। –7घ-1

चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के जीव (जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्‌भिज) जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं, उन

सबसे भरे हुए इस सारे जगत् को श्रीसीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

4. **कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।**
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार।। दोहा-68

मुनिश्वर ने कहा—हे हिमवान्! सुनो, विधाता ने ललाट पर जो कुछ लिख दिया है उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि भी नहीं मिटा सकते।।

5. **बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।**
आनन रहित सकल रस भोगीं बिनु बानी वकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी। —117.3-4

वह ब्रह्म बिना ही पैर के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह के ही सारे रसों का आनन्द लेता है और बिना ही वाणी के बहुत योग्य वक्ता है। वह बिना शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है। बिना ही आँखों के देखता है और बिना ही नाक के सब गंधों को ग्रहण करता है। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

6. **हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुविधि सब संता।।**
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए।। —139.3

शिवजी पार्वती को उपदेश करते हुए कहते हैं कि भगवान् अनन्त हैं और उनकी कथा भी अनन्त है। सब संत लोग उसे बहुत प्रकार से कहते-सुनते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पों में भी गाये नहीं जा सकते।

7. **हरि व्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।**
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।। —184.3

शिव पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब स्थानों पर समान रूप से व्यापक हैं, वे प्रेम से प्रकट हो जाते हैं । देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है जहाँ प्रभु न हों अर्थात् प्रभु सृष्टि के कण-कण में समाया है ।

2. अयोध्या काण्ड

8. **रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ।।** –27.2

महाराजा दशरथ अपनी महारानी कैकेयी से कहते हैं कि रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जायें, परन्तु रघुवंशी जो एक बार वचन दे देते हैं वह अवश्य पूरा करते हैं ।

9. **करम वचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।**
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहिं किएँ कोटि उपचार ।। दोहा-107

महर्षि भरद्वाज जी श्रीराम को उपदेश देते हुए कहते हैं कि जब तक कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर व्यक्ति आपका दास नहीं हो जाता, तब तक करोड़ों उपाय करने से भी, स्वप्न में भी वह सुख नहीं पाता । प्रभुभक्ति में ही सच्चा सुख है ।

10. **जरउ सा संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ ।**
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ।। दोहा-185

संत शिरोमणि तुलसीदास जी उपदेश देते हुए कहते हैं कि वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई-जल जाय जो श्रीरामजी के चरणों के सम्मुख होने में हँसते हुए सहायता न करे अर्थात् जो इसके बाधक हों ।

3. अरण्यकाण्ड

11. **क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ।।**
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ।।
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना । 38ख2.3

शिव पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि क्रोध, काम, लोभ, मद

और माया–ये सभी श्रीराम जी की दया से छूट जाते हैं वह नट जिस पर प्रसन्न होता है, वह व्यक्ति इंद्रजाल में नहीं भूलता । हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ । प्रभु का भजन ही सत्य है । यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति है ।

4. किष्किंधाकाण्ड

12. **धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु मोहि व्याध की नाईं ।।**
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा । अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ।।
अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ।। –8.3.4

बाली ने श्रीराम से कहा कि हे गोसाईं ! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह छिपकर मारा । मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा । हे नाथ ! किस दोष से आपने मुझे मारा । श्रीरामजी ने बाली को उत्तर दिया – हे मूर्ख ! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या–ये चारों समान हैं । इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता ।

5. सुन्दरकाण्ड

13. **निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।** –43.3

श्रीराम ने सुग्रीव से कहा कि जो व्यक्ति निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है । मुझे कपट और छल नहीं सुहातें ।

6. लंकाकाण्ड

14. **पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।** –77.1

रावण ने स्त्रियों से कहा कि दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं । परन्तु ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं ।

15. **पर हित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।**
निर्नय सकल पुरान वेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ।। –40.1

श्रीराम भरत से कहते हैं कि हे भाई ! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं हे और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई नीचता नहीं है । हे तात ! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग जानते हैं ।

16. **भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।।**
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ।। –44.3

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है । परन्तु सत्संग के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते । और पुण्य समूह के बिना संत नहीं मिलते । सत्संगति संसृति (जन्म मरण के चक्र) का अन्त करती है ।

17. **मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग तप ग्यान बिरागा ।।** –61.1

शिवजी गरुड़ को उपदेश देते हुये कहते हैं कि बिना प्रेम के केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्यादि के करने से श्रीरघुनाथजी नहीं मिलते । क्योंकि प्रभु केवल भक्ति से ही मिलते हैं ।

18. **वारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।**
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ।। दोहा-122 (क)

काकभशुण्डि जी गरुड जी को उपदेश देते हुये कहते हैं कि जल को मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाये और बालू से भले ही तेल निकल आये । परन्तु श्रीहरि के भजन बिना संसाररूपी समुद्र नहीं तरा जा सकता । यह सिद्धान्त अटल है ।

19. **संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ।।**
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ।।

गरुड़जी काकभशुण्डि को उपदेश देते हुए कहते हैं कि संतों का हृदय

मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है; परन्तु उन्होंने असली बात कहना नहीं जाना। क्योंकि मक्खन तो अपने ताप से पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं।

20. **कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।**
तिनि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि रामा।। —दोहा 230 (B)

तुलसीदास जी कहते हैं जैसे कामी पुरुष को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी पुरुष को धन प्रिय लगता है। उसी प्रकार हे रघुनाथ जी! आप मुझे निरंतर प्रिय लगते हैं। अर्थात् मैं आपका अनन्य भक्त हूँ।

विनय पत्रिका

66

21. **राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।।1।।**
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे।।
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।।2।।
ग्रसे कलि-रोग जोग संजम-समाधि रे।।
भला जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे।।3।।
राम नाम ही सों अंत सब ही को काम रे।।
जग नभ-वाटिका रही है फलि फूलि रे।।4।।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तून भूलि रे।।
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे।।5।।
तुलसी परोसो त्यागि माँगे कूर कौर रे।।

अरे पागल! राम जप, राम जप, राम जप। इस भयानक संसार रूपी समुद्र से पार उतरने के लिए श्रीराम नाम ही एक अपनी नाव है।

अर्थात् इस राम नाम रूपी नाव में बैठकर मनुष्य जब चाहे तत्काल पार उतर सकता है, क्योंकि यह मनुष्य के अधिकार में है । इसी एक साधन की शक्ति से सब ऋद्धि-सिद्धियों को साध ले, कयोंकि योग, संयम, समाधि आदि साधनों को कलिकाल रूपी रोग ने नष्ट कर दिया हैं भला हो, बुरा हो, उल्टा हो, सीधा हो, अन्त में सम्पूर्ण जगत् को एक राम नाम से ही काम पड़ेगा । यह जगत् भ्रम से आकाश में फले-फूले दीखने वाले बगीचे के समान सर्वथा कपोलकल्पित झूठा है, धुएं के महलों की भाँति क्षण-क्षण में दीखने और मिटने वाले इन सांसारिक पदार्थों को देखकर तू भूल मत, जो राम नाम को छोड़कर दूसरों का विश्वास करता है, हे तुलसीदास ! वह उस मूर्ख के समान है जो सामने रखे हुए भोजन को छोड़कर एक-एक टुकड़े के लिये कुत्ते की तरह घर-घर माँगता फिरता है ।

72

22. **मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।**
हौं तो साईं-द्रोही पे सेवक-हित साईं । । 1 । ।
रामसों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ।
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो । । 2 । ।
लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं ।
एतो बड़ो अपराध भौ न मन बावौं । । 3 । ।
पाथ माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचो ।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो । । 4 । ।

श्रीरामजी ने अपने भलेपन से ही मेरा भला कर दिया है । मैं तो स्वामी के साथ द्रोह और शत्रुता करने वाला हूँ । परन्तु मेरे स्वामी श्रीराम मुझ सेवक के हितकारी हैं । श्रीरामजी से बड़ा कौन है और

मुझसे छोटा कौन है? उनके समान खरा कौन है और मेरे समान खोटा कौन है? मैं राम का गुलाम हूँ। वास्तव में, श्रीराम का सेवक न होकर भी मैं इस पदवी को स्वीकार कर लेता हूँ। यह मेरा बड़ा भारी अपराध है। जैसे तुलसी का पेड़ बहुत नीचे होन पर भी जल के मस्तक पर चढ़ जाता है। परन्तु जल उसे अपने द्वारा ही सींचकर पाला-पोसा हुआ समझकर डुबोता नहीं। इसी प्रकार भगवान् श्रीरामजी अपना जन जानकर मुझ पापी को कोई कष्ट नहीं होने देते हैं।

114

23. **माधव! मो समान जग माहीं।**
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-विषय कोउ नाहीं।।1।।
तुम सम हेतु रहित कृपालु आरत-हित ईस न त्यागी।
मैं दुख-सोक-बिकल कृपालु! केहि कारन दया न लागी।।2।।
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार, अपनाध मोर मैं माना।।
ग्यान-भवन तनु दियेहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना।।3।।
बेनु करील, श्रीखंड बसंतह दूषन मृषा लगावै।
सार-रहित हत-भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहहु किमि पावै।।4।।
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-सृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे।।5।।

हे माधव जी! संसार में मेरे बराबर सब साधनों से रहित, महापापी, अति ग़रीब और इन्द्रियों के विषयों में डूबा हुआ दूसरा कोई नहीं। तुम्हारे समान निष्कारण दया करने वाले और दुखियों के हितकारी स्वामी को छोड़कर मैं दुःख और शोक से व्याकुल हो रहा हूँ। क्या कारण है कि अभी तक तुमने मुझ पर कृपा नहीं की? मैं मानता हूँ कि इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं है, सब अपराध मेरा ही है, क्योंकि हे नाथ! आपने मुझे जो ज्ञान से भरा हुआ यह मानव-शरीर दिया है, उसे पाकर भी मैं अपने स्वामी का वास्तविक रूप से पहचान

पाया । चन्दन को बाँस और बसन्त ऋतु को करील व्यर्थ ही दोष देते हैं, क्योंकि बाँस में चन्दन की गंध नहीं आ पाती तथा करील में बसन्त ऋतु में भी पत्ते नहीं निकल पाते । हे प्रभो ! मेरे हृदय का यह दृढ़ विचार है कि मैं हर तरह से कठोर हूँ और आप कोमल हैं । हे प्रभु ! तुलसीदास की मोह-शृंखला आपके ही दुड़ाने से छूटेगी ।

174

24. **जाके प्रिय न राम बैदेही ।**
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ।। 1 ।।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यौ कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ।। 2 ।।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।। 3 ।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो ।। 4 ।।

जिसे श्रीराम-सीता प्रिय नहीं है, वह कोटिक शत्रुओं के समान त्याज्य है । भले ही वह अपना परम स्नेही-सम्बन्धी ही क्यों न हो ? समझने के लिए ढेरों दृष्टान्त है—प्रहलाद ने अपने पिता को त्याग दिया, विभीषन ने अपने भाई रावण को भरत ने माँ केकयी को, राजा बलि ने गुरु शुक्राचार्य को और ब्रजांगनाओं ने अपने पतियों को त्याग दिया । तात्पर्य यह है कि भगवत्प्राप्ति में जो भी बाधक बने, त्याज्य है । परन्तु ये सब के सब लोग आनन्द और मंगल के विधायक बने । जितने मित्र और सेवायोग्य जन है, वे सब राम जी के ही नेह-नाते से मान्य हैं । अब और अधिक कहाँ तक कहें ? वह अंजन किस काम का, जिसके लगाने से आँखें ही फूट जायें ? गोस्वामीजी कहते हैं कि जिसके कारण से श्रीराम के चरणों में स्नेह

हो, वही सब प्रकार से अपना परम हितैषी, पूजनीय और प्राणों से भी अधिक प्रिय है । हमारा यही सुनिश्चित मत है ।

175

25. **जो पै लगन राम सों नाहीं ।**
तौ नर खर कूकर सूकर सम बृथा जियत जग माहीं । । 1 । ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के ।
मनुज देह सुर-साधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के । । 2 । ।
सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इँदाल के फल तजत नहीं करुआई । । 3 । ।
कीरति, कुल करतूति, भूति भलि, सील सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने । । 4 । ।

यदि श्रीराम जी से लगन नहीं है, तो वह मनुष्य इस संसार में गधे, कुत्ते और सूअर के समान व्यर्थ जीता है । आशय यह है कि विद्या पढ़कर राम के प्रेम के बिना गधे के समान बुद्धिहीन बोझ ढोने वाला, कुत्ते के समान भौंकने वाला और सूअर के समान भक्ष्य-अभक्ष्य खाने वाला हैं यों तो काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, निंदा, भय, भूख और प्यास का सभी को अनुभव होता हैं परन्तु जिस कारण से देवता और संत-जन मनुष्य शरीर की प्रशंसा करते हैं, वह तो श्रीसीतानाथ रघुनाथ जी का प्रेम ही है । कहने का आशय यह है कि भगवत्-प्रेम से ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है । कोई शूरवीर सुचतुर माता-पिता की आज्ञा में रहने वाला सुपूत सुन्दर लक्षण वाला तथा बड़े-बड़े गुणों से युक्त भले ही श्रेष्ठ गिना जाता हो, परन्तु यदि वह हरिभजन नहीं करता है, तो वह इन्द्रायण के फल के समान है जो अपना कड़वापन नहीं छोड़ता । भाव यह है कि जैसे इन्द्रायण के फल ऊपर से सुन्दर लगते हैं, पर भीतर से महाकड़वे होते हैं, ऐसे ही

मनुष्य चाहे जैसा गुणी और सुन्दर हो, बिना राम-भक्ति उसके भीतर की नीचता कभी नहीं जाती। यश, सत्कुल, अच्छे कर्म, उत्तम ऐश्वर्यशील, लावण्यमय स्वरूप से युक्त होने पर भी यदि कोई व्यक्ति प्रभु श्रीरामचन्द्र जी में प्रीति नहीं रखता तो वह वैसा ही नीरस है, जैसा बिना नमक के साग और तरकारी।

दोहावली

26. **हरे चरहिं तापहिं बरे फरें पसारहिं हाथ।**
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुराथ।।52।।

वृक्ष जब हरे होते हैं, तब पशु-पक्षी उन्हें चरने लगते हैं, सूख जाने पर लोग उन्हें जलाकर तापते हैं और फलने पर फल पाने के लिए लोग हाथ पसारने लगते हैं (अर्थात् जहाँ हरा-भरा घर देखते हैं, वहाँ लोग खाने के लिए दौड़े जाते हैं, जहाँ बिगड़ी हालत होती है, वहाँ उसे और भी जलाकर सुखी होते हैं और जहाँ सम्पत्ति से फल-फूला देखते हैं वहाँ हाथ पसारकर माँगने लगते हैं)! तुलसीदास जी कहते हैं कि इस प्रकार जग में तो सब स्वार्थ के ही मित्र हैं। परमार्थ के मित्र तो एकमात्र श्रीरघुनाथजी ही हैं। (जो सब समय ही प्रेम करते हैं और दीन स्थिति में तो विशेष प्रेम करते हैं)।

27. **बाधक सब सब के भए साधक भए न कोई।**
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ।।100।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि इस जगत् में तो सब लोग सबके बाधक ही होते हैं, साधक कोई किसी का नहीं है। कृपालु श्रीरामजी से ही भला होता है सो होता है।

28. **तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम।**
जब लगि भजत न राम कहुँ सोकधाम तजि काम।।131।।

जब तक यह जीव शोक के घर काम (विषयों की कामना) को

त्यागकर श्रीरामजी को नहीं भजता, तब तक उसके लिये न तो कुशल है और न स्वप्न में भी कभी उसके मन को शान्ति मिलती है ।

29. **सुख जीवन सब कोउ चहत सुख जीवन हरि हाथ ।**
तुलसी दाता मागनेउ देखिअत अबुध अनाथ ।। 170 ।।

सब कोई सुखमय जीवन चाहते हैं, परन्तु सुखमय जीवन प्रभु के हाथ में है । तुलसीदास को तो जगत् में दाता और भिखारी दोनों ही मूर्ख और अनाथ दिखायी देते हैं । (दाता इसलिये मूर्ख हैं कि वे दान के अभिमान से बँध जाते हैं और भिखारी इसलिये अनाथ हैं कि प्रभु, सबके सुहृद्, अकारण कृपालु भगवान् को छोड़कर नाशवान् लोगों से नाशवान् भोग मांगते हैं) ।

30. **तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम ।**
सेएँ सोक समर्पई बिमुख भएँ अभिराम ।। 258 ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि आशादेवी नाम की एक अद्भुत देवी है; यह सेवा करने पर तो शोक (दुःख) देती है और इससे विमुख होने पर सुख मिलता है ।

31. **एक भरोसो एक बल एक आस बिखास ।**
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास ।। 277 ।।

एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा है और एक ही विश्वास है । एक रामरूपी श्यामघन (मेघ) के लिये ही तुलसीदास चातक बना हुआ है ।

32. **नीच निचाई नहिं तजअ सज्जनहू कें संग ।**
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भए न भुअंग ।। 337 ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि सज्जन का संग होने पर भी नीच मनुष्य

अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । चन्दन के वृक्षों में निवास करके भी साँप विषरहित नहीं हुए ।

33. **तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ ।**
नाउ किनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ । ।358 । ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा और बुरी संगति से वही बुरा हो जाता है । हे लोगो ! देखो—जो लोहा नाव में लगने से सबको पार उतारने वाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देने वाला बन जाता है, वही तलवार और तीर में लगने से जीवों का प्राणघातक हो जाता है ।

34. **बचन बेष क्यों जानिऐ मनमलीन नर नारि ।**
सूपनखा मृग पूतना दसमुख प्रमुख बिचारि । ।408 । ।

किसी भी पुरुष या स्त्री के बाहरी वेष और वचन से कैसे पता लगा सकता है कि इसका मन मलिन है ? शूर्पणखा, मारीच, पूतना, रावण आदि के उदाहरणों पर विचार करो (इनके हृदय में कपट भरा था; परन्तु ऊपर से बड़े ही सुन्दर वेषधारी और मीठी वाणी बोलने वाले थे, इसलिये ये पहचाने नहीं जा सके । इस प्रकार संसार में दम्भी लोगों को उनके वेष-भूषा और बातचीत से पहचानना कठिन है ।)

35. **तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक ।**
साहित साहत सत्यब्रत राम भरोसो एक । ।447 । ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि धीरज, धर्म, विवेक, सत्साहित्य, साहस और सत्य का व्रत अथवा एकमात्र श्रीराम का भरोसा—बुरे समय के (विपत्तिकाल के) यही मित्र हैं ।

36. **बरु मराल मानस तजै चंद सीत रवि घाम ।**
मोह मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम । । 4 । ।

भले ही हंस मानसरोवर को छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता को और सूर्य धूप का परित्याग कर दे । चाहे मोह मस्ती को छोड़ दे । परन्तु तुलसी अपने इष्टदेव श्रीराम को नहीं छोड़ सकता ।

37. **असन बसर सुत नारि सुख पापिहु के घर होय ।**
संत समागम राम-धन तुलसी दुरलभ दोय । । 33 । ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि भोजन, वस्त्र, निवास, पुत्र एवं स्त्री का सुख तो पापी के भी घर में होता है । परन्तु सत्संग, हरिकथा यह अत्यंत दुर्लभ है ।

38. **तुलसी संत सु-अंब-तरु फूलि फरहिं पर-हेतु ।**
ये इत तें पाहन हनै वे उत तें फल देतु । । 40 । ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि सच्चे साधुओं का स्वभाव मीठे आम के वृक्ष की भाँति होता है जोकि पर हित के कारण फलते फूलते हैं । इसके विपरीत जितने संसार के लोग उन्हें पत्थर मारते हैं वे उन्हें उतने ही फल देते हैं ।

39. **सुख दुख दोनों एक सम संतन के मन माहिं ।**
मरु उदधि गत मुकुर जिमि भार भीजवो नाहिं । । 41 । ।

तुलसीदास जी कहते हैं कि संतों के लिए सुख-दुःख एक समान होता है जैसे सागर की लहरों का पर्वत एवं शीशे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे सागर की लहरों से भीगते नहीं हैं । इसी प्रकार सच्चे संतों पर भी सुख-दुःख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

40. **तन सुखाइ पंजर करै धरै रैन दिन ध्यान ।**
तुलसी मिटै न वासना बिना विचारे ग्यान ।। 45 ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि चाहे कोई व्यक्ति अपना शरीर सुखा के पिंजरा कर ले और रात-दिन ध्यान में अपने मन को लगाता रहे। परन्तु ज्ञान एवं संतोष के अभाव में संसार की इच्छाएं नहीं जाती हैं ।

41. **तरुवर फल नहीं खात है सरवर पियहिं न नीर ।**
परमारथ के कारणे सज्जन धरैं शरीर ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि वृक्ष अपना फल स्वयं नहीं खाते हैं और तालाब अपना पानी स्वयं नहीं पीता । ऐसे ही सज्जन एवं साधु लोग भी मानवता की भलाई के लिये ही शरीर धारण करते हैं । वे अपने स्वार्थ के लिये नहीं अपितु परमार्थ के लिये कार्य करते हैं ।

42. **तुलसी इस संसार में भूप हुये अनेक ।**
मैं मेरी करते सब चलेंगे तिनका न ले गये साथ एक ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि इस संसार में अनेक राजा हुये हैं । सारे राजा मेरी-मेरी करते इस संसार से कूच कर गये । परन्तु अपना साथ एक तिनका भी नहीं ले जा सके । उनको सब कुछ यही छोड़ कर जाना पड़ा ।

43. **ईश्वर नाम अमोल है दामन बिना बिकाय ।**
तुलसी अचरज देखिए, कोई ग्राहक न आय ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभुनाम अमूल्य निधि के समान है जोकि बिना पैसा ही लिया जा सकता है परन्तु तुलसीदास जी कहते हैं कि आश्चर्य की बात तो यह भी इसका कोई ग्राहक नहीं है अर्थात् अधिकांश प्रभु नाम सुमिरन न करके विषयविकारों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

44. तुलसी तुलसी क्या कहे तुलसी तृण की घास ।
रघुनाथ की कृपा भई तुलसी हो गये तुलसीदास ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि आप तुलसी तुलसी क्या कहते हो, तुलसी तो केवल तृण के समान है । परन्तु श्रीराम की जब मुझ पर कृपा हुई तो वह तभी तुलसी दास बन पाये हैं । यह सब सब श्रीराम की कृपा से हुआ है ।

45. तुलसी जग में यूँ रहो, ज्यूँ रसना मुख माँहि ।
खाती घी और तेल नित, फिर भी चिकनी नाहि ।।

तुलसीदास जी कहते हैं कि सब व्यक्ति को संसार में इस प्रकार रहना चाहिये जैसे हमारे मुख में जीभ रहती है । वह प्रतिदिन घी व तेल का रसास्वादन करती है फिर भी चिकनी नहीं है । संसार में रहो परन्तु इसमें लिप्त मत हो क्योंकि एक दिन हमको यहाँ सब कुछ छोड़ कर जाना है । संसार में बसो परन्तु फंसो मत ।

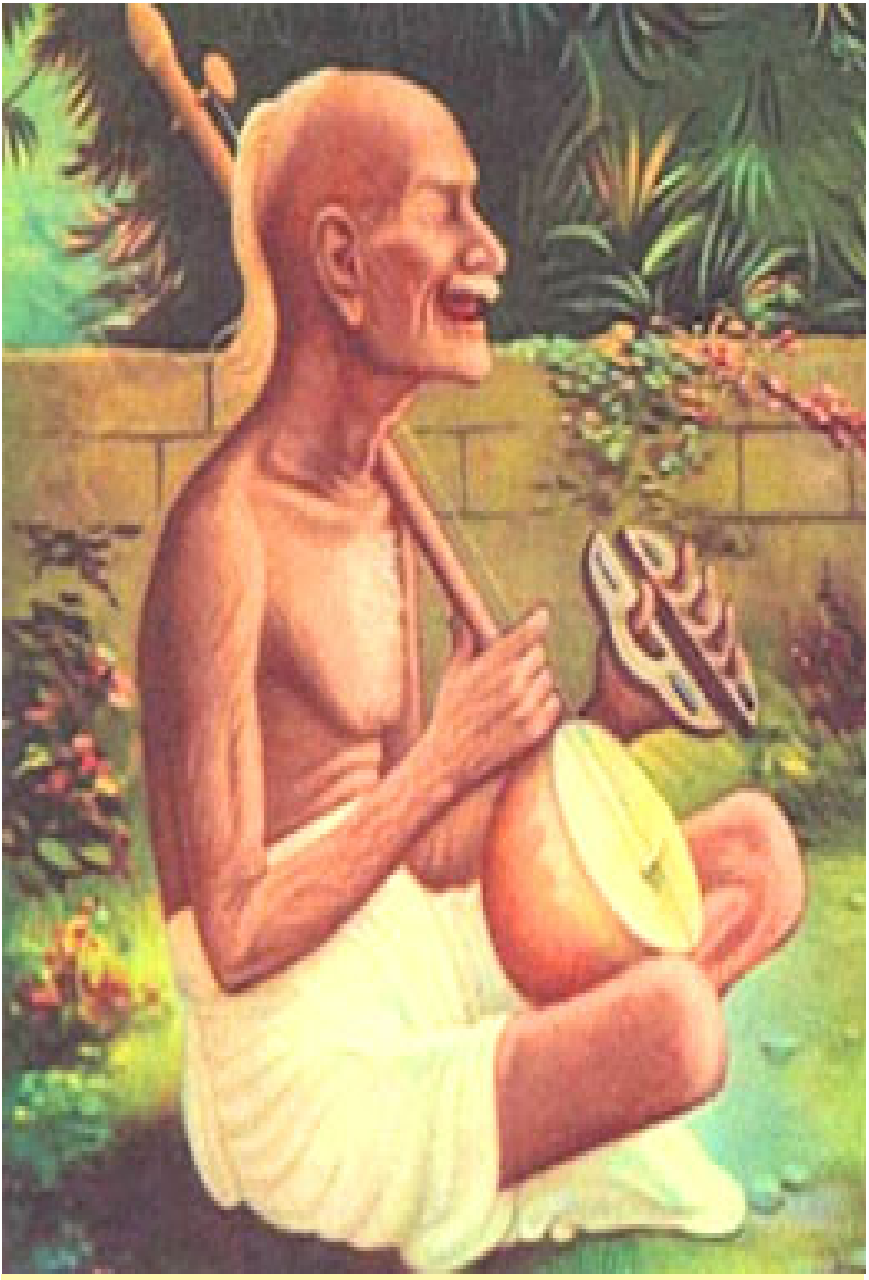

सूरदास जी

जीवन-परिचय

3. भक्त सूरदास

कवि सूरदास हिन्दी साहित्यजगत् में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनके जन्मस्थान और तिथि के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं। साधारणतः इनका जीवन काल 1478 ई० से 1553 ई० माना जाता है। इतिहास से ऐसा प्रकट होता है कि इनका जन्म दिल्ली से चार कोस दूर सीही ग्राम में हुआ था। जब वे किशोर थे तभी से उन्होंने कृष्ण भक्ति की शुरुआत कर दी थी। सूरदास जन्म से ही अन्धे थे। इसलिए पारिवारिक अनदेखी के कारण इन्होंने घर छोड़ दिया था। बाद में वे मथुरा के ही पास ब्रज में रहने लगे थे।

सूरदास की मधुर कविताएँ और भक्तिमय गीत लोगों को ईश्वर की ओर आकर्षित करते थे। इन गीतों के कारण ही उनकी ख्याति बढ़ती चली गई। उन्होंने अपना अन्तिम समय ब्रज में बिताया। गीत गाते हुए उन्हें जो भी मिल जाता उसी से वे अपनी जीविका चलाते थे।

इनकी रचनाओं में हमें प्राचीन कथनों का उल्लेख मिलता है। ये जब अपने प्रिय विषयों का वर्णन करते हैं तो ऐसा लगता है कि अलंकार तो इनके आगे-आगे चलते हैं, उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, और रूपकों की वर्षा होने लगती है। सत्य ही है कि इन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य की रचना की अपितु कृष्ण काव्य की विशिष्ट परम्परा को भी जन्म दिया। वस्तुतः इनकी प्रामाणिक कृतियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. सूरसागर :– यह सूरदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें लगभग 5000 पद हैं। इसमें विनय, भक्ति, विष्णु के अवतारों और कृष्ण लीला का वर्णन किया गया हैं इसमें भक्ति भावना एवं वात्सल्य वर्णन के दर्शन होते हैं। जैसे–

करी गोपाल की सब होई।
जो अपने पुरुषार्थ मानत, अति झूठो हे सोई।।
आँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी।

2. सारावली :—इसमें 1107 छंद हैं यह सारा ग्रंथ एक बृहत होली के गीत रूप में रचित है ।

3 साहित्य लहरी :— इसमें 118 पद हैं । इसमें राधा-कृष्ण की अनुराग लीला, नायिका भेद, अलंकार वर्णन का उल्लेख किया गया है । जैसे—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौ सर की पीर ।

किधौं सूर को पद लग्यो, बध्यो सकल शरीर । ।

इनकी रचनाओं में विषय वस्तु में मौलिकता, साम्प्रदायिक काव्य, श्रीकृष्ण को इष्टदेव मानना, प्रकृति चित्रण, नारी चित्रण, वात्सल्य वर्णन, गीति काव्य, ब्रजभाषा व रोचक शैली आदि विषयों का विस्तृत वर्णन मिलता है ।

अन्ततः यह कहना तर्कसंगत होगा कि सूरदास कृष्णकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । उनका वात्सल्य वर्णन तो हिन्दी साहित्य को एक नई देन है । वस्तुतः उनका वात्सल्य वर्णन तो हिन्दी सहित्य में बेजोड़ है । यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है । जैसे—

1. **सोभित कर नवनीत (माखन) लिए ।**

   घुटरुन चलत रेनू (धूल) तनु मण्डित लेप किये ।

2. **मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो ।**

   भोर भये गैयन के पाछे, मधुबन मोहि पठाओ

सूर ने वात्सल्य रस की जैसी पावन पयस्विनी प्रवाहित की वैसी न भूतो न भविष्यति । वास्तव में वात्सल्य का निरुपण करके सूरदास ने रसों की संख्या 9 से 10 कर दी । इसी कारण हिन्दी साहित्य में इनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है ।

3. भक्त सूरदास

1. **हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ ।**
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ ।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ ।
सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ ।
तन माया, ज्यौ ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ।।

भावार्थ - हे प्रभु ! हमारे अवगुणों का तनिक भी ध्यान न दें । यदि आप ध्यान देंगे तो हमारा कल्याण नहीं हो सकेगा; हमें सुगति प्राप्त न हो सकेगी । आप तो संसार में समदर्शी रूप में जाने जाते हैं—छोटे-बड़े, अंधे-बुरे, गृहस्थी-संन्यासी आदि सभी की दृष्टि में समान हैं । अतः आप अपनी इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए मुझे इस भव-सागर से पार उतार दीजिए । जिस प्रकार एक लोहा मंदिर अथवा पूजागृह में रखा जाता है और एक लोहा बधिक के घर में पड़ा रहता है । किन्तु पारस-पत्थर की दृष्टि में इन दोनों प्रकार के लोहे में कोई भेद नहीं है । वह दोनों को अपने स्पर्श से कंचन में परिवर्तित कर देता है । एक अच्छे और पवित्र जल से भरी हुई नदी और मैले जल से युक्त एक नाला जब परस्पर मिल जाते हैं तो गंगा नाम प्राप्त कर लेते हैं । उस समय वह नदी और नाला दोनों मिलकर एकरूप हो जाते हैं । सूरदासजी कहते हैं कि शरीर, माया और जीव ब्रह्म कहा जाता है, वह उससे मिलकर, बाहरी दोषों के परिणामस्वरूप, बिगड़ गया है । हे प्रभु ! या तो शरीर और जीव का उपर्युक्त न्याय के अनुसार निर्धारण कीजिए अर्थात् इन्हें शुद्ध कीजिए या फिर अपने प्रण का त्याग कर दीजिए, अपने

पतित-पावन एवं समदर्शी नाम को सदा के लिए छोड़ दीजिए ।

2. **प्रभु, हौं सब पतितन की टीकौ ।**
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौं जनमत हौं कौ ।
बधिक अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौ ।
मोहिं छाँडि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ ।
मरियत लाज सूर पतितनि में, मोहूँ तै को नीकौ ।।

भावार्थ - हे प्रभु ! मैं पापियों में सिरमौर हूँ; अन्य पतित तो केवल चार दिनों अर्थात् थोड़े समय से ही पतित हुए हैं परन्तु मैं तो जन्म से ही पापी हूँ । पतित-पावन होने के नाते आपने अजामिल, गणिका और पूतना जैसे पतितों का उद्धार किया है, लेकिन मैं तो यह तभी मानूँगा जब आप मेरा उद्धार करेंगे । यही नहीं, पतित होने के कारण जो मैं असहनीय दुःखों को सहन कर रहा हूँ, जब तक मैं उनसे मुक्त न हो जाऊँगा, तब तक आपके प्रति मैं कैसे विश्वास कर सकूँगा । मेरे समान कोई भी व्यक्ति पापपूर्ण कार्य करने में समर्थ नहीं है, मैं यह बात पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कह सकता हूँ । सच तो यह है कि मैं पतित समाज में लाजवश मर रहा हूँ कि मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ और कौन है जिनका आप मुझसे भी पहले उद्धार करना चाहते हैं ।

3. **मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै ।**
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ।
कमल-नैन कौ छाँडि महातस, और देव को ध्यावै ।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै ।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील फल भावै ।।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।

भावार्थ - हे कृष्ण ! मेरा मन अन्यत्र आपके चरणों के अतिरिक्त कहीं भी कैसे चैन पा सकता है । यहाँ कवि ने 'कहाँ' शब्द का प्रयोग सार्थक रूप में किया है, जिससे उसके कथ्य में प्रभविष्णुता आ गयी है । इस एक शब्द में कवि की अगाध निष्ठा भी निहित है और साथ ही अन्य

देवी-देवताओं एवं साधनों के नगण्यता के भाव भी। जिस प्रकार बीच समुद्र में यदि कोई पक्षी जहाज पर से उड़कर कहीं जाना भी चाहे तो कहाँ जाए। बहुत दूर तक फैले विस्तृत सागर को अपनी निजी सामर्थ्य से कैसे पार करें। सूरदास सम्भवतः यह भी कहना चाहते हैं कि जैसे पक्षी जहाज से उड़कर कुछ दूर जाते हैं किन्तु थक कर उन्हें वापिस वहीं लौट आना पड़ता है, वैसे ही आरम्भ में मैंने भी सांसारिक वस्तुओं एवं अन्यान्य देवी-देवताओं में शान्ति की प्राप्ति का प्रयास किया था किन्तु सब प्रयास व्यर्थ गए। सूरदास कहते हैं कि अब मैंने आपकी शरण ग्रहण कर ली है अतः मैं अब कहीं अन्यत्र नहीं जाऊँगा। दो पंक्तियों के बाद की पंक्तियों से यह भी ध्वनित होता है कि सूर ने श्रीकृष्ण की शरण बिना सोचे-विचारे तथा सांसारिकता से पलायन की दृष्टि से नहीं ली, वरन् उनकी इस क्रिया के पीछे उनका सुनिर्णीत एवं सुविचारित विवेक भी था। कारण सूर की कृष्ण शरणगति उनकी विवेक की उपज थी। इसलिए सूरदास कहते हैं कि कमल-नयन श्रीकृष्ण की महिमा के समक्ष अन्यान्य देवी-देवताओं की उपासना क्यों की जाए? यदि कोई वैसा करता है तो वह समीप की गंगा से प्यास बुझाने के स्थान पर कुँआ खोदकर प्यास बुझाना चाहता है। तभी सूरदास ने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी की शरण जाने वाले को दुरमति कहा है। उन्होंने श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी का भी पान किया था। अन्ततः वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण शरणागति वह कामधेनु है जो लौकिक-पारलौकिक सभी प्रकार की समृद्धि प्रदान करती है। अतः सांसारिक व्यक्ति और कार्यों से अभीष्ट सिद्धि के प्रयास निरर्थक हैं; क्योंकि जिसके पास कुछ नहीं वह दूसरों को क्या दे सकेगा।

4. **तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग।**
जिनके संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग।
कहा होत पय-पान करायें, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाएं, स्वान न्हावाएं गंग।
खर कौ कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन-अंग।

गज कौ कहा सरित अन्हवाऐ, बहुरि धरै वह ढंग ।

पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग ।

सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ।।

भावार्थ - हे मन ! तू उन प्राणियों का साथ छोड़ दे जो ईश्वर से विमुख हैं । कारण यह है कि ऐसे व्यक्तियों के साथ रहने से दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है और ईश्वर की आराधना में बाधा पड़ती है । सर्प को चाहे जितना दूध का पान कराओ किन्तु क्या वह विष उगलना छोड़ देता है? नहीं, विष उगलना तो उसकी स्वाभाविक प्रकृति है । इसी प्रकार कौवे को कपूर चुगाने से, कुत्ते को गंगा के पवित्र जल में स्नान कराने से, गधे के चन्दन के सुगंधित लेपन से, बन्दर को आभूषण पहनाने से एवं हाथी को सरिता में स्नान कराने से क्या लाभ? ये सब तो ज्यों के त्यों बने रहते हैं और पुनः अपना पुराना ढंग ही अपना लेते हैं । दुष्ट अथवा कठोर पत्थर को बाण नहीं भेद सकते चाहे तीरों से भरा तरकस खाली ही न क्यों हो जाए । वास्तविकता तो यह है कि काले कम्बल पर और कोई दूसरा रंग चढ़ ही नहीं सकता है । कवि के कहने का अभिप्राय यह हे कि दुष्ट प्राणियों पर भगवद्भक्ति का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता है ।

5. **अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।**

देख्यौ चाहिति कमलनैन कौं निसि-दिन रहतिं उदासी ।।

आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी ।

केसरि तिलक मोतिनि की माला, वृंदावन के बासी ।।

काहू के मनकी कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी ।

सूरदास-प्रभु तुम्हारे दरस कौं, करवत लैहौं कासी ।।

भावार्थ - हे उद्धव ! हमारी आँखें तो श्रीकृष्ण के दर्शन की प्यासी हैं । वे तो कमल रूपी नेत्र वाले श्रीकृष्ण को देखना चाहती हैं, इसीलिए रात और दिन उदास ही रहती हैं । उद्धव जी आए और आँगन में फिर गए और जाते समय हमारे गले में फाँसी डाल गए । हमारे लिए तो

केसर का तिलक, मोतियों की माला और वृंदावन का निवास अत्यन्त दुर्लभ होता जा रहा है। इस संसार में सब लोग स्वार्थी है? लोगों के मन में तो बस हँसी और मजाक का भाव ही बना रहता हैं इसी में वे परम आनन्द की उपलब्धि मानते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! यदि हमें श्रीकृष्ण के दर्शन सुलभ न होंगे तो हम उनके दर्शन के लिये काशी में जाकर करवट ले लेंगी।

6. **अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल।**
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा-सब्द रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज चलत असंगत चौल।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यौ, लोभ तिलक दियो भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नंद लाल।

भावार्थ - हे गोपाल! मैं मानव-शरीर को धारण किए हुए बहुत विषयासक्ति के भँवर में पड़ा हूँ। इन विषयों ने मुझे नर्तक की भाँति लोलुप बनाकर नचा दिया है; मैं विषयों के पीछे मारा-मारा फिरता हूँ और उनकी ही प्राप्ति में जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। काम और क्रोध को मैंने वस्त्र के समान धारण किया हुआ है और विषयों को अपने गले का हार बनाया हुआ है। घोर मोह में पड़ा हुआ हूँ; निन्दापूर्ण वाणी बोलता हूँ। मन में अनेक भ्रम जाल से बुने हुए हैं तथा कुसंगति में पड़ा हुआ हूँ। मेरे हृदय में लालसा और तृष्णा के स्वर अलाप रहे हैं और अनेक प्रकार की ध्वनि करके मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। माया का कमरबंद बाँधे हुए हैं और लालसा का तिलक मेरे माथे पर लगा हुआ है। इन माया मोह और विषयों के जालों ने मुझे ऐसा जकड़ रखा है कि मुझे अपनी सुधि नहीं है। माया का जाल सर्वत्र फैला है। यह सब मेरी अविद्या के कारण हैं हे नंद के लाल

कृष्ण! मुझ पर कृपा करो और मुझे अविद्या से प्रकाश की ओर उन्मुख करो जिससे मैं संसार के इस भंवर से मुक्त हो जाऊँ।

7. **ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी**

इकटक मग जोवतिं, अरु रोवति, भूलेहूँ पलक न लागि।

बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौं विदमान।

अब धौं कहा कियो चाहत हौं, छाँड़ौ निरगुन ज्ञान।।

तुम हौ सखा श्यामसुन्दर के, जानत सकल सुभाइ।

जैसैं मिलैं सूर के स्वामी, सोई करहु उपाइ।।

भावार्थ - हे उद्धव! हमारी आँखें श्रीकृष्ण के प्रेम में पूर्णरूपेण रँगी हुई हैं, उन्हीं में आसक्त है। ये आँखें श्रीकृष्ण के आने वाले मार्ग की ओर टकटकी लगाए रहती हैं और जब श्रीकृष्ण के आने का भाव गोपियों के हृदय में आ जाता है तो रोने लगती हैं नेत्रों से अश्रु-प्रवाहित होने लगते हैं भूलकर भी पलक नहीं लगातीं। बिना वर्षा-ऋतु के ही वर्षा ऋतु का आगमन हो गया, यह सब कुछ प्रत्यक्ष रूप में देख ही रहे हो। हमें कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। अब आप क्या चाहते हैं, यह हमें कुछ भी तो ज्ञात नहीं है। हे उद्धव! हमारी दयनीय स्थिति को अवलोक कर निर्गुण-ज्ञान की बातों का परित्याग कर दो। फिर, तुम तो श्रीकृष्ण के परम मित्र हो; श्रीकृष्ण के स्वभाव से भलीभाँति परिचित हो। अतः जैसे भी सम्भव हो, वही उपाय करो जिससे हमें श्रीकृष्ण मिल जाएँ; उनके दर्शन करके ही हमें कुछ सांत्वना मिलेगी और हमारी वियोग-व्यथा कम होगी।

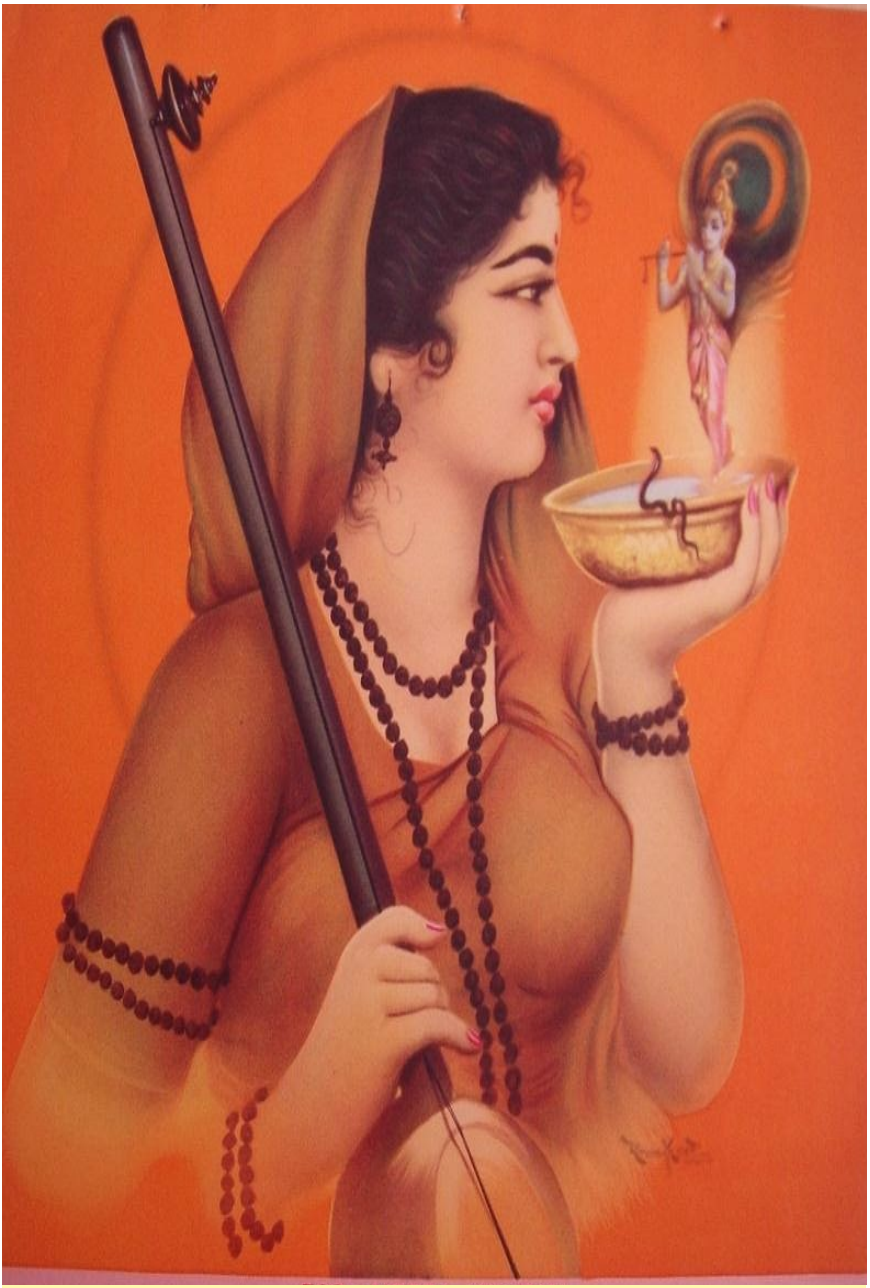

मीराँबाई प्रेम दिवानी

जीवन-परिचय

4. मीराँबाई प्रेम दिवानी

राजस्थान की भूमि वीरों की भूमि है। जिसमें प्रायः वीर अपनी जान पर खेलकर भी अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हैं। ऐसे ही वीरतापूर्ण और ओजपूर्ण वातावरण में एक नया स्वर प्रस्फुटित हुआ जो सरलता एवं मृदुलता का संचार करता है। यह स्वर मीराँबाई का है। राजस्थान के इतिहास में मीराँबाई का आविर्भाव शिलाखंड पर एक कामनीय लता के पल्लवित और कुसुमित होने के समान है। सांवरे के रंग में रंगी इस प्रेमप्रतिमा की स्वर-लहरी ने केवल राजस्थान ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत को अपनी पावन भावधारा से अभिसिंचित कर दिया।

मीराँ की जन्मतिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु साधारणतः यह माना जाता है कि मीराँ का जन्म 1494 ई० में हुआ और मृत्यु द्वारिका में 1546 ई० में हुई जहाँ वह अनेक वर्षों तक रही। बचपन में ही मीराँ को ऐसा वातावरण मिला था जिससे उसके मन में धर्म और भक्ति का अनुराग हो गया था। मीराँ का नाम अपने ही गुणों के लिये इतिहास में उज्ज्वल रहेगा जिसने न तो सन्तान को जन्म दिया और न ही किसी को अपना शिष्य बनाया। फिर भी इनके बारे में कुछ जानकारियाँ इस प्रकार से हैं—

(1) मीराँ महाराणा कुम्भा की पत्नी थी। कहीं-कहीं इसे राजकुमार भोज की पत्नी माना जाता है।

(2) मीराँ महाकवि विद्यापति की समसामयिक थी।

(3) मीराँ और तुलसी में पत्रों का आदान-प्रदान हुआ था।

(4) मीराँ के दर्शन के लिए अकबर और तानसेन आए थे।

मीराँबाई जोधपुर के दूदा जी की पौत्री तथा रत्नसिंह की पुत्री थी। दूदा जी ने 1519 ई० में मेड़ता नगर की स्थापना की थीं इसलिए इनके वंशज आगे चलकर मेड़तिया कहलाये। मीराँ के पिता ने अपनी सन्तान को सब सुखों में अति उच्च पद दिया और उसके शील, गुण, नम्रता आदि को देखकर

उसे भक्ति क्षेत्र में और काव्य क्षेत्र में रचना करने के लिए प्रोत्साहित किया। वास्तव में बचपन में ही मीराँ की माता जी का देहान्त हो गया था। बचपन से ही ये श्रीकृष्ण की मूर्ति से अत्यधिक प्यार करती थीं। वास्तव में उसे घर में ऐसा ही वातावरण मिला जिससे उसके मन में भक्ति के प्रति अनुराग हो गया। जैसे–

पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो।

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु किरिया करि अपनायो।

खरचै नहीं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो।।

जब मीराँ अपने ससुराल पहुँची तो उसकी सास ने उसे देवी की पूजा करने का आग्रह किया, किन्तु मीराँ ने आग्रह को अस्वीकार कर दिया। आरम्भ में उसे ससुराल में अधिक सम्मान प्राप्त हुआ और उसका जीवन सुख से बीतने लगा। परन्तु यह सुख के दिन अधिक समय तक न टिक सके। कुछ ही समय बाद कुंअर भोजराज का देहान्त हो गया तथा फिर पिता और ससुर भी चल बसे। बचपन की बीज रूप में भक्ति वैराग्य की पूर्ण भावना लेकर प्रकट हुई। अतः मीराँ ने लोक लाज त्याग कर भक्ति के मधुर एवं संघर्षपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश किया। दिन रात कृष्ण की भक्ति में लीन रहने लगी। इस तल्लीनता के कारण ही उसे उसके देवर राणा ने अनेक अमानुषिक यंत्रणाएं भी दीं। परन्तु मीराँ टस से मस न हुई। दुःखी हो कर मीराँ ने मेवाड़ को छोड़ दिया और मेड़ता आ गई। यहाँ पर मीराँ एकाग्रचित से अपनी भक्ति और संतों की सेवा में जुट गई। जैसे–

मैं तो हरि चरनन की दासी, अब मैं काहे को जाउँ कासी।

घट ही में गंगा, घटही में जमना, घट घट है अविनाशी।।

जोधपुर और मेड़ता में शत्रुता होने के कारण जोधपुर के राजा ने मेड़ता पर चढ़ाई कर दी और उसे जीत लिया। इससे मीराँ ने मेड़ता को छोड़ दिया और वृंदावन में रहने लगी। इसके बाद द्वारिका चली गई। कुछ काल बाद वहीं इनकी मृत्यु हो गई।

4. मीराँबाई प्रेम दिवानी

1. **मैं तो गिरधर के घर जाऊँ । । टेक । ।**
गिरधर म्हांरो साँचो प्रीमत, देखत रूप लुभाँऊँ ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ भोर गये उठि आऊँ ।
रैणदिना बाके सँग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ ।
जो पहिरावै होई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ ।
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ । । 47 । ।

भावार्थ - मैं तो कृष्ण के घर जाऊँगी । कृष्ण ही मेरा सच्चा प्रियतम है, उसके रूप को देखते ही मैं उसके सौन्दर्य की लोभी बन जाती हूँ जैसे ही रात होगी, मैं यहाँ से उठकर उनके घर पहुँच जाऊँगी और प्रातःकाल होते ही वहाँ से वापिस आ जाऊँगी । रात-दिन उसी के साथ खेलती रहेगी । वह जो कुछ पहनने को देगा, वही पहन लूँगी । जो खाने को देगा वही खा लूँगी । मेरा और उनका पुराना प्रेम है, बिना उनके मैं एक पल भी नहीं रह सकती । वह जहाँ बैठायेगा, मैं वहीं बैठ जाँगी और यदि वह बेचना चाहेगा तो मैं सहर्ष बिक भी जाऊँगी । मीराँ कहती है कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागरे हैं जिन पर मैं बार-बार बलि जाती हूँ ।

2. **म्हां गिरधर रँग राती, सैयां म्हां । । टेक । ।**
पंचरंग चोला पहर्‌या सखी म्हां, झिरमिट खेलण जाती ।
वां झिरमिट मां मिल्यो सांवरो, देख्यां तण मण राती ।
जिणरो पिया परदेस बस्यांरी लिख लिख भेज्यां पाती ।
म्हारा पियां म्हारे होयड़े बसतां णा आवां णा जाती ।
मीरां रे प्रभु गिरधरनागर मग जोवां दिण राती । ।49 । ।

भावार्थ - हे सखि ! मैं श्रीकृष्ण के प्रेम में रंगी हुई हूँ; अर्थात् उन पर पूर्ण रूपेण अनुरक्त हूँ । मैं पंचरंग का चोला पहनकर झिरमिट खेलने जाती हूँ; अर्थात् पाँच तत्त्व से बने हुए इस कर्म-शिथिल शरीर के द्वारा—जो कर्मानुसार प्राप्त जीवात्मा की योनि का आवरण है—श्रीकृष्ण के मिलन की ओर उन्मुख हो रही हूँ । इस उन्मुक्ता में भी मुझे श्रीकृष्ण का मिलन हुआ जिसे देखकर मैं तन-मन से—पूर्णतः उन पर अनुरक्त हो गई । जिन स्त्रियों के प्रति प्रदेश में हैं, वे उन्हें लिख-लिखकर पत्र भेजती हैं, किन्तु मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में ही बसा हुआ है, इसलिए मुझे उसकी अन्यत्र खोज नहीं करनी पड़ती । मीराँ कहती हे कि मेरे स्वामी तो गिरधरनागर हैं, जिनकी मैं रात-दिन प्रतीक्षा करती रहती हूँ ।

3. **अख्याँ तरशा दरसन प्यासी । ।टेक । ।**
मग जोवां दिण बीतां सजणी, गैण पड़या दुखरासी ।
डारा बैठ्या कोयल बोल्या बोल सुण्या री गासी ।
कड़वा बोल लोक जग बोल्या करस्याँ म्हारी हांसी ।
मीरां हरि रे हाथ बिकाणी जणम जणम री दासी । ।71 । ।

भावार्थ - हे सजनी ! मेरी आँखें प्रियतम के दर्शन के लिए तरस रही हैं और उसी के दर्शनों की प्यासी है । उनकी राह देखते-देखते दिन बीत जाता है और विरह के कारण आँखों में दुःखों के ढेर भरे हुए हैं । जब डाली पर बैठ कर कोयल बोली और मैंने उसका दुःखपूर्ण बोल सुना तो मेरा दुःख और भी अधिक उद्दीप्त हो गया । मेरे इस प्रेम के लिए संसार ने मेरी भर्त्सना की और मेरी हँसी उड़ाई । मीराँ कहती हे कि मुझे जगत् की भर्त्सना और उनकी हंसी की कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि मैं तो हरि के हाथ बिक गई हूँ और उसकी जन्म-जन्मान्तरों से दासी हूँ ।

4. **कैसे जिऊँ री माई, हरि बिन कैसे जिऊ री । । टेक । ।**
उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई ।

पल एक जल कूँ मीन बिसरे, तलफत मर जाई ।
पिया बिन पीली भई रे, ज्यों काठ घुन खाय ।
औषध मूल न संचरै, रे बाला बैद फिरि जाय ।
उदासी होय बन बन फिरुँ, रे बिथा तन छाई ।
दासी मीराँ लाल गिरधर मिल्या है सुखदाई । ।112 । ।

भावार्थ - हे सखि ! हरि के बिना मेरा जीवित रहना मुश्किल है । जिस प्रकार मेंढक पानी से उत्पन्न होता है और पानी में ही पलता है, जिस प्रकार मछली पानी से बिछुड़ने पर एक पल भी जीवित नहीं रहती और तड़प कर मर जाती है, उसी प्रकार हरि के बिना मेरी गति हो रही है । मैं प्रियतम के बिना पीली पड़ गई हूँ और उनके विरह में उसी प्रकार जर्जर हो रही हूँ; जिस प्रकार लकड़ी को घुन खा जाता है । मेरी इस विरह-व्यथा पर औषधि का बिल्कुल भी प्रभाव नहीं होता और हे प्रियतम ! वैद्य निराश होकर लौट जाता है । मैं प्रियतक के बिना उदास होकर वन-वन खोज में मारी-मारी फिर रही हूँ । विरह-व्यथा मेरे समस्त शरीर में व्याप्त हो रही है । मीराँ कहती है कि मैं गिरिधर लाल की दासी हूँ और वह सुख देने वाला गिरधर मुझे मिल गया है ।

5. **दरस बिण दूखाँ म्हारा णैण । । टेक । ।**
सबदाँ सुणतां मेरी छतियाँ काँपाँ मीठों थारो बैण ।
विरह बिथा काँसूँ री कह्याँ पेठाँ करवत अैण ।
कल णा परताँ पल हरि भग जीवाँ भयाँ छमासी रैण ।
ये बिछड्याँ म्हाँ कलपाँ प्रभुती, म्हारो गयो सब चैण ।
मीराँ रे प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण । ।134 । ।

भावार्थ - हे प्रभु ! तुम्हारे दर्शन के लिये तुम्हारी राह देखते-देखते मेरी आँखें दुखने लगी । तुम्हारी याद आते ही मेरा हृदय कांपने लगता है और तुम्हारे मीठे वचन प्रेम भरे वचन याद आ जाते हैं । मैं अपनी विरह-व्यथा को किससे कहूँ ? विरह की आरी पूरी तरह से मेरे दिल पर चल गई है । मुझे तुम्हारे बिना तनिक भी चैन नहीं पड़ता । मैं

तुम्हारी राह देखती रहती हूँ। तुम्हारे विरह में रात बहुत लम्बी हो जाती है। हे प्रभु! तुम्हारे बिछुड़ने पर मैं तड़प रही हूँ। मेरा सारा चैन समाप्त हो गया हैं मीराँ कहती है कि हे प्रभु! तुम कब मिलोगे, क्योंकि तुम ही दुःख को मिटाने वाले और सुख को देने वाले हो।

6. **हेरी म्हां दरदे दिवाणी म्हारां दरद न जाण्यां कोय ।।टेक।।**
घायल री गत घाइल जाण्यां हिवड़ी अगण संजोय।
जौहर की गत जौहरी जाणै, क्या जाण्यां जिण खोय।
दरद की मार्‌यां दर दर डोल्यां बैद मिल्या नहिं कोय।
मीराँ री प्रभु पीर मिटांगां जब बैद सांवरो होय।।96।।

भावार्थ - अरी! मैं तो कृष्ण के विरह में दुःख में पागल हो गई हूँ। किन्तु मेरे इस दर्द को कोई नहीं जानता। इस दर्द को तो वही जान सकता है। जिसके हृदय में विरह की आग लगी हुई हो; घायल की गति को घायल ही जानता हैं रत्न की परख तो जौहरी ही कर सकता है। जिस व्यक्ति ने रत्न खो दिया है, वह उसका मूल्य क्या जाने? मैं इस विरह जन्य दर्द के कारण दर-दर घूमती-भटकती फिर रही हूँ, लेकिन मुझे कोई ऐसा वैद्य नहीं मिला जो मेरे इस दर्द को दूर कर दे। मीराँ कहती है कि मेरी यह वेदना तो तभी मिट सकती है जब स्वयं कृष्ण जी ही वैद्य बनकर इसका इलाज करें, अर्थात् आकर दर्शन दें।

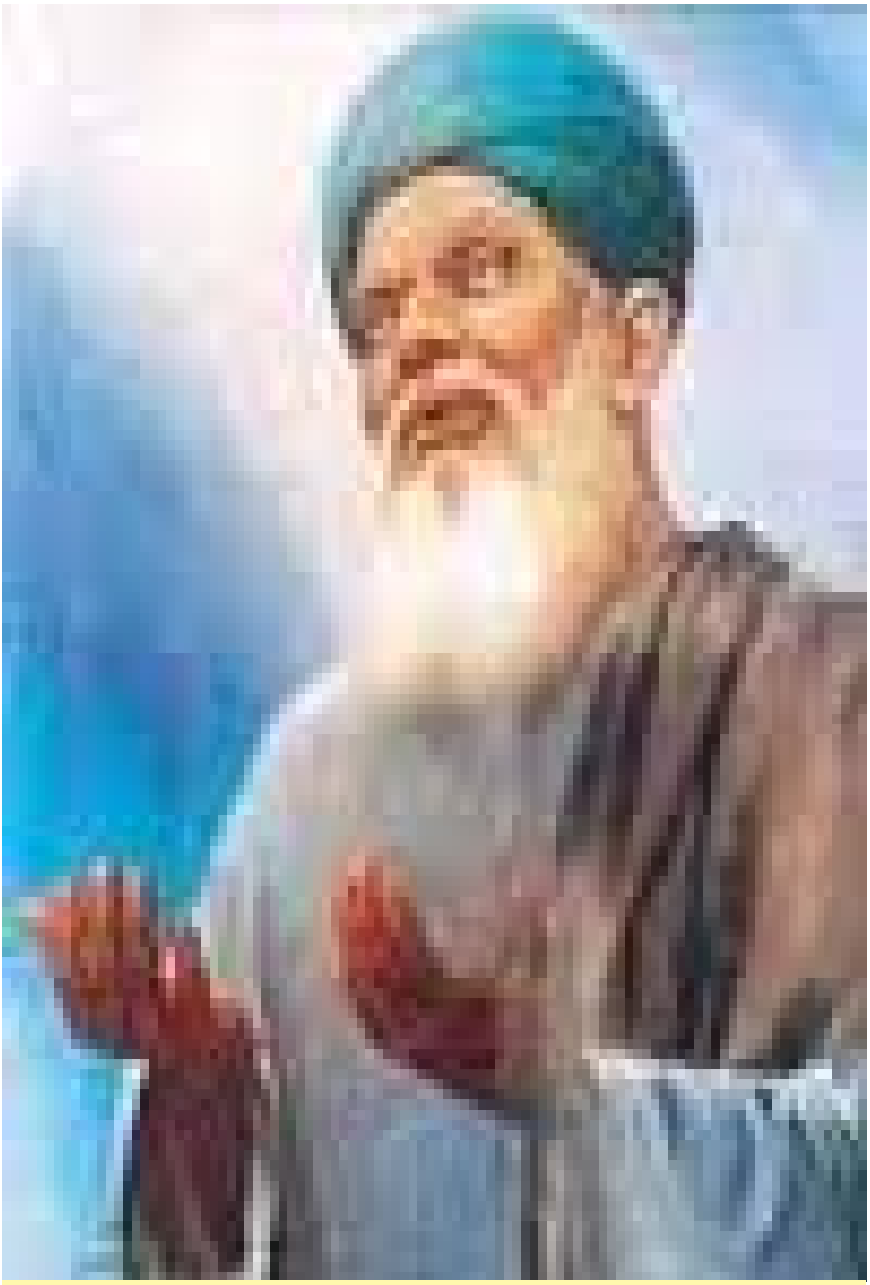

बाबा शेख़ फ़रीद

जीवन-परिचय

5. बाबा शेख़ फ़रीद

शेख़ फ़रीद का जन्म 1173 ई० में जिला मुलतान में हुआ। इनके पूर्वज सुल्तान महमूद गजनवी से संबंध रखते थे। आपके पिता गजनवी के भतीजे थे। 12 वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने क़ुरान आदि का अध्ययन कर लिया। इनका जन्म गुरु नानक देव जी से लगभग 500 वर्ष पूर्व हुआ था। बचपन में ही इनके मन में तपस्या का विचार आ गया और जैसे ही युवा बने तपस्या के लिए घर से निकल पड़े। इन्होंने बारह वर्ष जंगल में काटे। प्रभु का सिमरन करते हुए गर्मी-सर्दी को अनुभव करते तथा पेड़ों के पत्ते खा कर गुजारा करते। इस प्रकार कई प्रकार की ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त कर ली।

लेकिन सिद्धियों से उनके मन में अभिमान आ गया। परन्तु थोड़े ही समय में वे समझ गये और फिर तपस्या के लिए वन की ओर निकल पड़े। अब उन्होंने वृक्ष का पत्ता तोड़ना भी उचित न समझा और नीचे गिरा पत्ता खाकर ही गुजारा करने लगे। इससे इनका शरीर बहुत ही कमजोर हो गया। परन्तु ईश्वर का साक्षात्कार न हो सका।

इसलिए पुनः गुरु की खोज में वे अजमेर में चिश्ती साहिब के पास आ गये। वहाँ उनकी सेवा करने लगे। सेवा करते-करते काफी समय बीत गया और उनसे आशीर्वाद लेकर वे अपने घर चले गये। इस प्रकार वहाँ से वे इस्लाम के प्रचार में लग गये। नेकी, सत्य और विनय का प्रकाश चारों ओर फैलने लगा।

बाबा फ़रीद भारत में हुए सबसे महान् सूफ़ी दरवेशों में से एक हैं। इन्हें पंजाबी भाषा में रचना करने वाला पहला सूफ़ी दरवेश भी कहा गया है। गुरु नानक ने इनकी वाणी को इनके शिष्य शेख़ इब्राहिम से लेकर अपने उत्तराधिकारियों को सौंपा और गुरु अर्जन देव जी ने गुरु साहिबान, सन्त नामदेव, गुरु रविदास, सन्त कबीर आदि सन्तों की वाणी के साथ इसे श्रीगुरुग्रंथसाहिब में शामिल कर लिया। इससे इनकी वाणी ख़ुद-ब-ख़ुद प्रमाणित हो जाती है। श्रीगुरुग्रंथसाहिब में शामिल होने के कारण इनका नाम सूफ़ी दरवेशों में अग्रणी माना जाता है। श्रीगुरुग्रंथसाहिब में आपके 123 शब्द व श्लाक हैं। कई जीवनीकारों ने बाबा फ़रीद की कंधार, ग़जनवी,

ख़ुरासान, बग़दाद, बुख़ारा, क़िरमान आदि की यात्राओं और पीरों-फ़कीरों और दरवेशों से हुई मुलाक़ातों के विस्तृत विवरण भी दिये हैं। बाबा फ़रीद के द्वारा पंजाब के फ़रीदकोट की यात्रा किये जाने का भी वृत्तांत मिलता है। सभी जीवनीकारों ने लिखा है कि बाबा फ़रीद गृहस्थ दरवेश थे। उनका विवाह हुआ था। उनके 5 बेटे और 3 बेटियाँ थीं। उनके बच्चों के विवाह हुए थे। आपके जीवन का मूल आधार प्रेम का हठ था, हठ का प्रेम नहीं।

पंजाब में निर्गुणधारा के पूरी तरह स्थापित होने से पूर्व ही बाबा फ़रीद को एक महान् संत के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। आपकी भक्ति, नम्रता, लोकसेवा और मृदु वाणी के कारण लोगों के हृदय में आदर के भाव पैदा हो गये। वर्तमान युग में तो यह वाणी स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बन कर हमारे जीवन और चिन्तन के और भी निकट आ गई है। समय के साथ-साथ इनकी निकटता लोकमानस के साथ बढ़ती ही चली गई। पाठकगण इनसे अनेक विषयों का लाभ उठा रहे हैं।

इनकी वाणी सदियों से खोज और विचार का विषय बनी रही। अनेक लेखकों ने इनकी वाणी पर अनेक ग्रंथ लिखे। इनकी वाणी चाहे मात्रा में बहुत ही कम हो परन्तु उसमें जीवन के कुछ गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं। इसलिए इनकी वाणी पर अनेकों शोध-पत्र तथा पुस्तकें भी लिखी गई है। बाबा फ़रीद के अठासीवें प्रकाशोत्सव पर आपके जीवन और उपदेश के संबंध में अनेक गोष्ठियाँ हुई एवं अनेक पत्र-पत्रिकाएं भी प्रकाशित हुई। स्पष्ट है कि आपकी वाणी सूफ़ी सिद्धान्तों पर ही आधारित है और निर्गुणवादी संतों की वाणी से इनकी समानता भी की जा सकती है। इनकी वाणी में अनेक विषयों का वर्णन किया गया है। बाबा फ़रीद पूर्ण परोपकारी और मानवता के सच्चे कामिल मुर्शिद थे। आपने अपना सारा जीवन लोगों को सत्यमार्ग दिखाने में न्योछावर कर दिया। अंततः 1265 ई० में आपका निधन हो गया।

5. बाबा शेख़ फ़रीद

1. **फरीदा जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ।।**
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ।।

या तो हम परमात्मा की खोज ही नहीं करते और अगर करते भी हैं तो ग़लत स्थानों पर । कोई उसको मन्दिरों, मस्जिदों में ढूंढता है, कोई उसकी तलाश में तीर्थों पर भटकता है, तो कोई उसको जंगलों, पहाड़ों में ढूंढता है । सीधी-सी बात हे कि कोई भी वस्तु केवल वहाँ से ही मल सकती है, जहाँ वह असल में हो । बाबा फ़रीद सावधान करते हें कि ऐ भले लोगों, कुल मालिकों की तलाश में जंगलों, पहाड़ों में क्यों भटक रहे हो, में भटकने से पैरों में काँटे तो चुभ सकते हैं तथा अनेक प्रकार के कष्ट तो मिल सकते हैं, मगर ख़ुदा हर इन्सान के अन्दर है । अन्दर बैठे ख़ुदा से मिलाप केवल अन्दर ही हो सकता है । बाहर भटकने से न कभी किसी को कुछ हासिल हुआ है और न हो ही सकता है ।

2. **फरीदा मै भोलावा पग दा मतु मैली होइ जाइ ।।**
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ।।

ग़ाफ़िल इन्सान इस चिन्ता में रहता है कि मेरी पगड़ी मैली न हो जाये, पगड़ी को मिट्टी न लग जाये । वह यह समझने की कोशिश नहीं करता कि मौत के बाद शरीर क़ब्र में दबाया जायेगा और पगड़ी बाँधने वाले सिर को भी अन्त में मिट्टी खा लेगी और यह भी मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो जायेगा । बाबा फ़रीद शरीर की नश्वरता का भाव दृढ़ करवा रहे हैं । आप कहते हैं कि जिस शरीर का हार-शृंगार करते हम नहीं थकते, एक दिन उसे मिट्टी के सुपुर्द हो जाना है ।

3. **फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ।**
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख ।।

बाबा फ़रीद नेक कमाई और सादा जीवन की उपमा करते हुए कहते

हैं कि मेरी रोटी लकड़ी की तरह सख़्त है और मेरी भूख ही दाल सब्जी है। अच्छा और स्वादिष्ट भोजन खाने वालों को बहुत दुःख सहन करने पड़ेंगे। आपका भाव है कि हक़-हलाल की कमाई की रूखी-सूखी रोटी बेईमानी के 56 प्रकार के पदार्थों से बेहतर है। इसी भाव को आपने अगले श्लोक में और अधिक स्पष्ट किया है।

4. **रुखी सुखी खाइ कै ठंडा पाणी पीउ।**
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ।।

अपनी हक़-हलाल की रूखी-सूखी रोटी पर सन्तोष कर लेना बेहतर है, दूसरों के 56 पदार्थ देखकर मन में लोभ और ईर्ष्या पैदा नहीं होनी चाहिये। सभी कामिल-फ़क़ीरों ने हक़-हलाल की कमाई द्वारा प्राप्त रूखे-सूखे खाने की महिमा की है।

5. **फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु।।**
गुनही भरिआ मैं फिरा लोकु कहै दरवेसु।।

बाबा फ़रीद नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मेरा काला पहनावा देखकर लोग मुझे दरवेश कहने लगे हैं, परन्तु मैं तो गुनाहों से भरा हुआ है।

6. **फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि।।**
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि।।

सारे संसार का एक ही परमात्मा है और वह हर एक के अन्दर मौजूद है। इसलिये किसी को बुरा या छोटा नहीं कहा जा सकता हैं सब इन्सान एक क़ादिर की क़ुदरत हैं, सबके अन्दर एक ही ख़ुदा का नूर है, इसलिये सब एक जैसे प्यार और इज़्ज़त के लायक हैं।

7. **चबण चलण रतंन से सुणीअर बहि गए।।**
हेड़े मुती धाह से जानी चलि गए।।

बुढ़ापे में दांत, पैर, आँखें, कान आदि सब अंग काम करना बंद कर देते हैं। शरीर रोता है कि हाय! मेरे प्यारे साथी मेरा साथ छोड़ गये हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि जब शरीर के अंग ही शरीर के नहीं रहते और शरीर अपना नहीं रहता तो संसार में और कौन सी चीज़

अपनी बन सकती है ?

8. **फरीदा मै जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि ।।**
ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि ।।

आप फ़रमाते हैं कि जब तक मैं साधारण स्तर पर था तो मैं अपने जीवन के दुःखों के बारे में सोचता था, जब मैं ऊँचे रूहानी मण्डलों पर पहुँचा तो मुझे पता चला कि सारा संसार ही दुःखों की आग में जल रहा है । सारा संसार बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु का संताप भोग रहा है ।

9. **फरीदा रब खजूरी पकीआं माखिअ नई वहंन्हि ।।**
जो-जो वंञै डीहड़ा सो उमर हथ पवंनि ।।

पूर्ण सन्तों ने परमात्मा को सत्य-रूप, ज्ञान-रूप और आनन्द-रूप माना है । यहाँ आप परमात्मा के आनन्द-रूप होने का भाव प्रकट कर रहे हैं । परमात्मा पकी हुई खजूरों और शहद की नदी की तरह मीठा, प्यारा, रस-रूप और आनन्द-रूप है । अर्थात् उत्तम से उत्तम पदार्थों के स्वाद भी परमेश्वर से मिलाप के परम आनन्द का मुक़ाबला नहीं कर सकते । ऐसे आनन्द-रूप परमात्मा की प्राप्ति में देरी नहीं करनी चाहिये । क्योंकि दिन-ब-दिन आयु घटती जा रही है और मृत्यु नज़दीक आ रही है ।

10. **फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग ।।**
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग ।।

बाबा फ़रीद कहते हैं कि काल रूपी कौओं ने शरीर को नोच-नोच कर पिंजर बना दिया है, परन्तु इन्सान का दुर्भाग्य देखो कि अभी तक उसे परमात्मा का दीदार नसीब नहीं हुआ ।

11. **फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखीआ जंगलि जिन्हा वासु ।।**
ककरु चुगनि थलि वसनि रब न छोड़नि पासु ।।

यहाँ पक्षी का अर्थ साधु या दरवेश है । जंगल का अर्थ एकान्त से है । कंकर बीनने का अर्थ रूखी-सूखी रोटी पर गुज़ारा करना है ।

धरती पर सोते हैं पर हर हालत में ख़ुदा की बन्दगी में लगे रहते हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि मैं ऐसे दरवेशों पर क़ुर्बान जाता हूँ जो सन्तोष, सादगी और एकान्तमय जीवन व्यतीत करते हुए अपना ध्यान सदा प्रभु की भक्ति में लीन रखते हैं।

12. **सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेन्हि।।**
होनि नजीकि खुदाइ दैं भेतु न किसै देनि।।

बाबा फ़रीद कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त सदा सब्र और संतोष की भावना के साथ प्रभु की भक्ति करते हैं। वे कभी अपनी भक्ति का दिखावा नहीं करते। उन्हें प्रभु की चाहे कितनी भी नज़दीकी क्यों न मिल जाये, वे कभी अपनी रूहानी अवस्था का भेद ज़ाहिर नहीं करते। जिसके पास हीरा होता है, वह उसे छिपाकर रखता है, उसकी नुमाइश नहीं करता। जितनी ज्यादा ख़ुदा की रहमत हज्म की जाये, उतनी ज्यादा वह और रहमत करता है।

13. **फरीदा दरवेसी गाखड़ी चोपड़ी परीति।।**
इकनि किनै चालीऐ दरवेसावी रीति।।

सच्ची दरवेशी कठिन है। दिखावे की और झूठे प्रेम की दरवेशी से कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। सच्चे दिल से ख़ुदा से इश्क़ करने वाली सच्ची दरवेशी कोई विरला जीव ही अपना सकता है।

14. **मति होदी होइ इआणा।। ताण होदे होइ निताणा।।**
अणहोदे आपु वंडाए।। को ऐसा भगतु सदाए।।

परमात्मा के भक्त को नम्रता, सहनशीलता और मिठास के गुण धारण करने की प्रेरणा दी गई है। इस श्लोक में आप उसे और गुणों को धारण करने का उपदेश देते हैं। ख़ुदा का सच्चा भक्त वही कहला सकता है जो पूर्ण ज्ञानी होने के बावजूद बालकों की तरह भोला-भाला रहता है, अपार रूहानी शक्ति का मालिक होते हुए भी कभी उस शक्ति का दिखावा नहीं करता और ग़रीबी तथा लाचारी में भी सदा दाता ही बना रहता है, भिखारी नहीं बनता।

15. **इकु फिका न गालाइ सभना मैं सचा धणी ।।**
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे ।।

बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं कि सदा याद रख कि वह सच्चा मालिक सबके अन्दर है, किसी से भी कड़वे और रूखे वचन न बोल, किसी का दिल न दुखा । सब लोग और सबके दिल मोतियों और हीरों की भाँति अनमोल हैं ।

16. **फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे ।।**
केल करेदे हंढ नो अचिंते बाज पए ।।
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं ।।
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं ।।

जीव रूपी बगुला संसार रूपी नदी के किनारे बैठा अनेक प्रकार के खेल खेलता है । खेलों में मस्त बगुले पर अचानक परमात्मा द्वारा भेजे गए मौत के बाज़ झपट पड़ते हैं । बगुले (मनुष्य) को सब खेल भूल जाते हैं । परमात्मा वह कर देता है, जिसका उसने कभी सपना भी नहीं लिया होता ।

बाबा फ़रीद सावधान कर रहे हैं कि मौत पता नहीं किस समय, किस जगह और किस हालत में आ जानी है । इन्सान ऐशो-इशरत और रंग-तमाशों में खोकर मौत को और संसार में आने के अपने वास्तविक उद्देश्य को भूल जाता हैं जब मौत के बाज झपटते हैं तो क्षण-भर में सारा खेल बिगड़ जाता है । मौत का समय निश्चित है, परन्तु किसी को उस समय का कोई ज्ञान नहीं, इसलिये प्रभुभक्ति का कार्य कभी पीछे नहीं डालना चाहिये ।

17. **साढे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अंनि ।।**
आइओ बंदा दुनी विचि वति आसूणी बंन्हि ।।
मलकत मउत जां आवसी सभी दरवाजे भंनि ।।
तिन्हा पिआरिआ भाईआं अगै दिता बंन्हि ।।
वेखहु बंदा चलिआ चहु जणिआ दै कंन्हि ।।
फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि ।।

बाबा फ़रीद कहते हैं कि इन्सान का साढ़े तीन मन का हृष्ट-पुष्ट शरीर संसार में अन्न-पानी के सहारे दौड़ता फिरता है। इन्सान संसार में सुन्दर इच्छाएँ पल्ले बाँधकर फिर रहा है। अचानक मौत का फरिश्ता आ धमकाता है। वह शरीर के सारे दरवाज़े तोड़ देता है। (शरीर के नौ दरवाजे हैं—दो आँखें, दो कान, दो नासिका, मुँह, मल द्वार और मूत्र द्वार। आत्मा पहले हाथों और पाँवों में से सिमटती है, फिर धड़ में से और अन्त में आँखों में से शरीर को छोड़कर ऊपर की ओर चली जाती है। जिस-जिस हिस्से में से आत्मा सिमटती जाती है, वह-वह द्वार टूटता जाता है। जिन सम्बन्धियों पर यह प्यार में जान न्योछावर करने के लिये तैयार रहता था, वे इसे अर्थी पर डालकर श्मशान-भूमि या क़ब्रिस्तान ले जाते हैं। जो व्यक्ति जीवन में चुस्ती-फुर्ती की मूरत था, उसे चार व्यक्तियों के कन्धों पर श्मशान-भूमि ले जाया जाता है। वह चलते समय कुछ भी साथ नहीं ले जा सकता, केवल किये हुए कर्म और भक्ति ही ख़ुदा की दरगाह में सहायक होते हैं।

भक्त नामदेव

जीवन-परिचय

6. भक्त नामदेव

नामदेव महाराष्ट्र में 26-9-1270 ई० में पैदा हुए। ऐसा उनके एक अभंग से पता चलता है। इस प्रकार नामदेव नानक से लगभग 200 वर्ष पूर्व व कबीर से 130 वर्ष पूर्व पैदा हुए। उनके पिता का नाम दामाशेठ था और माता का नाम गोणाई। पूर्वजों के समान ये भी छीपे व दर्जी का काम करते थे। इनका जन्म नरसी बामनी नामक ग्राम में हुआ। नामदेव जब कुछ बड़े हुए तब उनके पिता ने उन्हें व्यापार में लगाया। नामदेव ने व्यापार तो शुरू किया परन्तु उतना ही कमाया जिससे उनका व उनके परिवार का गुजारा चल सके। उनकी पत्नी राजाई इस बारे में कई बार शिकायत करती रहती थीं।

बिसोबा खेचर ने लिखा है कि–

बहुत कामना से तीर्थों में जाने पर भी अविद्या का साथ नहीं छूटता। ध्यान, धारणा, मुद्रा, जप आदि यम-नियम के तप से व्यर्थ ही शरीर को कष्ट देते हो, इससे स्थिर सुख प्राप्त नहीं हो सकता। परमात्मा का ध्यान करो। पर-स्त्री को माता के समान समझो, पर-द्रव्य पर चित्त न लाओ। गुरु की सेवा करो, वह तुम्हें आत्मज्ञान देगा। भ्राँति नष्ट होगी और परमेश्वर के दर्शन होंगे। देह के शून्य भवन में प्रकाश प्रकट होगा। सोऽहं की ध्वनि गूंजेगी। खेचर कहता है कि नामदेव! क्रोध का त्याग करके उस परम पुरुष का ध्यान करो।

नामदेव ने अपनी बाद की कविताओं में जहाँ-जहाँ बीठला, विट्ठल, श्रीरंगा, राम, हरि आदि नाम लिये हैं वे सब उसी एक परम पिता परमेश्वर की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार नानक, कबीर, दादू, पलटू आदि संतों ने राम, हरि, मुरारी, गोविन्द आदि नाम सारे संसार में व्याप्त परमेश्वर के लिये प्रयोग किये हैं, न कि किसी एक अवतार या मूर्ति के लिये।

अपनी यात्राओं में वे गुजरात, काठियावाड़, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार और पंजाब में घूमे। इन जगहों में कई स्थान हैं जिनसे नामदेव का नाम लोककथाओं के द्वारा जुड़ा हुआ हैं इसी प्रकार कई ऐसे लोक समुदाय हैं जो कि अपने आप को नामदेव के शिष्य कहते हैं।

उत्तर भारत में 50 वर्ष तक नामदेव घूमते रहे और अंत में पंजाब के गुरदासपुर जिले के एक निर्जन स्थान में आ गये। समय के साथ यहाँ उनके

भक्त और चाहने वाले आकर बसने लगे और धीरे-धीरे यहाँ एक गाँव बस गया। इस गाँव का नाम घुमान है। 18 साल तक यहाँ नामदेव परमेश्वर का ध्यान व भजन करते हुए शब्द मार्ग का उपदेश देते रहे। 1340 ई० उन्होंने शरीर त्याग दिया।

भक्त राम देव श्री गुरुग्रंथसाहिब में 61 शब्द दर्ज हैं। परमात्मा की खोज में बाहर तीर्थों में भटकना, नदियों, सरोवरों में स्नान करना, पहाड़ों और जंगलों में जाना व्यर्थ है।

तीरथ जाऊ न जल में पैसू। जीव जंत न सताऊँगा।।
अठ सठि तीरथि गुरु लषाये। घट ही भीतर न्हाऊँगा।।

आंतरिक रूहानी अनुभव शरीर के नौ द्वारों को खाली करके आँखों के पीछे आने पर प्राप्त होता है। यह क्रिया मृत्यु से मिलती-जुलती हैं मृत्यु में आत्मा शरीर को छोड़ देती है। इस आध्यात्मिक अभ्यास में आत्मा शरीर से अलग होकर ऊपर के देशों में भ्रमण करती है, और कुछ समय के बाद फिर शरीर में आ जाती है। चेतनता नौ द्वारों से निकल कर तीसरे लित या भ्रू-मध्य में आ जाती है और आत्मा ऊपर के देशों में प्रवेश कर जाती है। इसी को संत लोग 'जीते जी मरना' कहते हैं। नामदेव कहते हैं मुझे मरण का डर नहीं है।

कबीर, नानक, मीरा, तुकाराम, पलटू, दरिया साहब आदि संतों ने नामदेव का नाम आदर के साथ लिया है। नामदेव महाराष्ट्र के भक्ति मार्ग के आद्य साधक माने जाते हैं। वे अभंग को सर्वप्रथम मराठी काव्य में लाये और यह मराठी कवियों को बहुत प्रिय हुआ। मूर्तिपूजा, कर्मकांड, जात-पात के विषय में इनके स्पष्ट विचारों के कारण हिन्दी विद्वानों ने इन्हें कबीर आदि संतों का आध्यात्मिक अग्रज कहा है। नामदेव के गीत छोटे पर लालित्यपूर्ण हैं। सरल शब्दों में उनमें गूढ तत्त्व भरा पड़ा है। भक्ति से वे ओतप्रोत हैं और परमेश्वर से मिलने की लगन से भरे हैं। अपनी बात करने में वे निर्भीक हैं। उनके अभंग बड़ी आसानी से गाये जा सकते हैं। वे मधुर हैं परन्तु उतने ही स्पष्ट और जोरदार भी।

6. भक्त नामदेव

1. **अवघी ही पंढरी सुखाची वोवरी । अवघ्या घरोघरी ब्रह्मानंद । ।**
अवघा हा विट्ठल सुखाचाचि आहे । अनुसरे तो लाहे सर्व सुख । ।
पहावा नयनीं ऐकावा श्रवणीं । अवघा ध्यावा अवघ्या मनें । ।
अवघिये आवडी अवघा गावा गीतें । अवघा सर्वांभूतीं तोचि आहे । ।
अवघा हा जाणावा अवघा हा मानावा । अवघा हा वाखाणावा अवघी वाचा । ।
अवघा ओळखुनी अवघा गिळिजे मनें । अवघा हाचि होणें म्हणे नामा । ।

(श्री नामदेव गाथा 424)

प्रभु सब सुख की कोठरी है । हर एक शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्मानन्द बसता हैं प्रभु सुख का स्रोत है और उसका अनुसरण करने से सब सुख मिलते हैं । नयन से देखो, कान से सुनो अर्थात् 'निरत' व 'सुरत' द्वारा परमात्मा को पूरी तौर से जान लो (निरत-आत्मा की देखने की शक्ति, सुरत-आत्मा की सुनने की शक्ति) । पूर्ण मन से उसका ध्यान करो । पूर्ण प्रेम से उसके गीत गाओ । वह सर्वत्र व्याप्त है, अर्थात् वह कण-कण में है । हे मानव ! उस पूर्ण को पूर्ण रूप से जानो और अपनी पूर्ण शक्ति से उसकी प्रशंसा करो । मन से उसे समझो और हृदय में उतार लो । नामदेव कहते हैं कि पूर्ण रूप से वही हो जाओ अर्थात् स्वयं ही परमेश्वर हो जाओ ।

2. **सर्वाभूति पाहे एक वासुदेव । पुसोनिया ठाव अहंतेचा ।**
तोचि संतसाधु ओळखावा निका । येरे ते ऐका मायाबद्ध । ।
देखिलिया धन मृत्तिकेसमान । नवविधा रत्नें जैसे धोंडे ।
काम क्रोध दोधे घातले बाहेरी । शांति क्षमा घरीं राबवित । ।
नामा म्हणे नाम गोविंदाचें वाचे । विसंबेना त्याचें क्षणमात्र ।

(श्री नामदेव गाथा 841)

जो संसार के सब जीवों में एक परमात्मा देखता है, जिसने अहंकार

को पूरी तौर से नष्ट कर दिया है, वही शुद्ध संत-साधु है, पहचान लो। शेष सब माया से बंधे हुए हैं। वह धन को मिट्टी के समान देखता है और रत्नों के भण्डार को पत्थरों के समान। उसने काम, क्रोध को बाहर निकाल दिया है और शांति क्षमा को अपना लिया है। वह प्रभु का नाम हर दम लेता रहता है और उस प्रभु को क्षणमात्र भी नहीं भूलता है। नामदेव कहता है वही सच्चा संत है।

3. **मलै न लाछै पारमलो परमलीओ बैठो रे आई।।**
आवत किनै न पेखिओ कवनै जाणै री बाई।।
कउणु कहै किणि बूझीऐ रमईया आकुलु री बाई।।
जिउ आकासै पंखीअलो खोजु निरखिओ न जाई।।
जिउ जल माछै माछलो मारगु पेखणो न जाई।।
जिउ आकासै घडूअलो म्रिगत्रिसना भरिआ।।
नामे चे सुआमी बीठलो जिनि तीनै जरिआ।।3।।2।।

(श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ० 525)

प्रभु निर्मल है, उसको मैल नहीं लगता। सुगन्ध की भाँति ही उसका अनुभव होता है, किसी ने उसे आते-जाते नहीं देखा। सुगन्ध की भाँति ही वह अदृश्य है, परन्तु अनुभव किया जाता है। उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता और न ही उसे कोई जान सकता है। वह सर्वत्र समाया हुआ, कुल, गोत्र, रंग-रूप रहित है। जिस प्रकार पक्षी आकाश में उड़ता है और मछली जल में तैरती है, परन्तु उसका मार्ग किसी को नज़र नहीं आता, उसी प्रकार उस प्रभु का वर्णन करना सम्भव नहीं है। जिस तरह आकाश में मृग-जल का आभास होता है, परन्तु इस पानी को ढूंढ सकना असम्भव है, इसी प्रकार प्रभु को पूरी तरह जानना मुश्किल है। नामदेव कहते हैं कि उसके स्वामी परमेश्वर ने उनके तीनों ताप-शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक जला दिये हैं।

4. **जब देखा तब गावा।।उत जन धीरजु पावा।।**
नादि समाइलो रे सतिगुरु भेटिले देवा।।1।।रहाउ।।

जह झिल मिल कारु दिसंता ।। तह आनहद सबद बजंता ।।
जोती जोति समानी ।। मैं गुरु परसादी जानी ।। 2 ।।
रतन कमल कोठरी ।। चमकार बीजुल तही ।।
नेरै नाही दूरि ।। निज आतमै रहिआ भरपूरि ।। 3 ।।
जह अनहत सूर उज्यारा ।। तह दीपक जलै छंछारा ।।
गुरुपरसादी जानिआ ।। जनु नामा सहज समानिआ ।। 4 ।।

(श्री गुरुगंथसाहिब 656-657)

जब मैंने अपने प्रभु को देखा तो खुशी से मैं गा उठा और मुझे शांति मिल गई । सतगुरु के मिलने से मैं शब्द रूप नाद में समा गया । वहाँ झिलमिल रोशनी दिखती है और अनहद शब्द धुनकारें देता है । गुरु की कृपा से मैंने यह जान लिया और उस ज्योति में मेरी जोति समा गई अर्थात् आत्मा रूपी जोत परमात्मा में लीन हो गई । (आज्ञ चक्र के ऊपर) सिर की कोठरी है जिसमें कई रतन और कमल हैं । चमत्कार करती हुई बिजली वहीं है, और वह मेरी आत्मा में समाई हुई है । वहाँ अनहद नाद के सूरज का उजाला होता है जिसके सामने (सूर्य-चन्द्र की रोशनी) दीपक जैसी लगती है । नामदेव कहते हैं कि गुरु की दया से ही मुझे यह अवस्था प्राप्त हुई है, और मैं सहजावस्ता में समा गया हूँ ।

5. **आनिले कागदु काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले ।।**
पंचजना सिउ बात बतऊआ चीतु सु डोरी राखीअले ।।
मनु रामनामा बेधिअले ।। जैसे कनिक कला चितु मांडीअले ।। 1 ।।
आनिले कुंभु भराईले ऊदक राजकुआरि पुरंदरीए ।।
हसत बिनोद बीचार करती है चीतु सु गागरि राखीअले ।। 2 ।।
मंदरु एकु दुआर दस जाके गऊ चरावन छाडीअले ।।
पांच कोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ।। 3 ।।
कहत नामदेउ सुनहु तिलोचन बालकु पालन पउढीअले ।।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब 972)

नामदेव जी कई उपमाओं के द्वारा कहते हें कि संसार का कारोबार करते हुए भी, उनका ध्यान परमेश्वर की ओर है । जैसे–पतंग को आकाश में उड़ाने वाला पाँच जनों से अर्थात् मित्रों से (गूढ़ार्थ, पाँच इन्द्रियों के द्वारा संसार का कार्य करते हुए भी) बातचीत करता है, परन्तु उसका ध्यान पतंग की डोरी में रहता है । उसी भाँति मेरा मन प्रभु से बिंधा रहता है । जैसे सुनार का मन अपने काम में रहता है । जैसे गाँव की कन्याएँ गागर में पानी भर कर लाती हैं और आपस में बातचीत व हँसी मज़ाक भी करती रहती हैं, परन्तु उनका ध्यान गागर में ही रहता है । जैसे एक द्वार के घर से गायें बाहर चरने को दस मील तक भी जाती है । परन्तु उनका ध्यान सदा अपने बछड़ों की ओर रहता है । (यहाँ आशय नर देही से है और गायों से आशय इन्द्रियों के द्वारा अनुभव से है ।) जैसे माँ घर का सब कामकाज करती रहती है परन्तु ध्यान पालने के बच्चे की ओर रहता है । इसी प्रकार नामदेव कहते हैं कि हे त्रिलोचन ! मैं दुनियाँ के सब कार्य करता हूँ परन्तु मेरा यान सदा प्रभु की ओर ही रहता है ।

गुरु रविदास

जीवन-परिचय

7. गुरु रविदास

गुरु रविदास निर्गुण भक्ति काव्य के मुख्य कवि माने जाते हैं। इनका जन्म बनारस के नजदीक एक गाँव का बताया जाता है। इनके जन्म के विषय में विद्वानों में अनेक मत हैं। संत रविदास 1414 ई० से 1540 ई० तक जीवित रहे। इनकी जाति के बारे में साधारणतः यह माना जाता है कि ये चमार जाति में पैदा हुए थे।

भारत के विभिन्न भागों में भाषा, शैली और स्थानीय बोलियों की भिन्नता के कारण रविदास जी के अनेक रूपान्तर प्रचलित हैं। जैसे—रईदास, रयदास, रूईदास, रूहिदास, रुद्रदास, रामदास, रैदास और रविदास। परन्तु अधिकांशतः रैदास और रविदास ही प्रचलन में रहा। यही नाम श्रीगुरुग्रंथसाहिब व मुख्य हिन्दी पुस्तकों और संस्कृत पुस्तकों में प्रयुक्त मिलता है।

बचपन से ही रविदास जी का ख़्याल आध्यात्मिकता की ओर था। वे अक्सर अपनी माता जी के साथ महात्माओं का प्रवचन और सत्संग सुनने जाया करते थे तथा साधु-महात्माओं के प्रति विशेष आदर और भक्ति भाव रखते थे। अनन्तदास के अनुसार नौ वर्ष की अवस्था में ही इन पर परमात्मा की भक्ति का गहरा रंग चढ़ गया। इससे इनके माता-पिता चिन्तित हो उठे और उन्होंने उन्हें अपने पारिवारिक पेशे में लगा कर आध्यात्मिकता की ओर से हटाने की चेष्टा की। रविदास जी को विद्यालय की विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी। परन्तु उनकी वाणी के अध्ययन से यह स्पष्ट पता चलता है कि उन्हें हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा हिन्दुस्तान की अनेक स्थानीय भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और वे हिन्दुओं की धार्मिक कथा-कहानियों से सुपरिचित थे। रविदास जी ने अपना पारिवारिक पेशा तो सीखा, परन्तु परमात्मा के प्रति उनकी प्रेम-भक्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

साधु-संतों के प्रति वे इतने अधिक उदार थे कि वे बहुत कम ही कीमत में या कभी-कभी बिना कुछ कीमत लिये ही उन्हें जूतों का जोड़ा पहना दिया करते थे, जिससे उनके पिता नाराज़ होते थे। सांसारिक काम-धंधों की ओर विशेष झुकाव पैदा करने के ख़याल से उनके पिता ने लोना नामक एक कन्या

से बहुत कम आयु में ही उनकी शादी कर दी । फिर भी उनके व्यवहार और दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं आया । अन्त में तंग आकर उनके पिता ने उन्हें उनकी पत्नी के साथ परिवार से अलग कर दिया तथा पारिवारिक सम्पत्ति का उचित हिस्सा दिये बिना उन्हें घर के पिछवाड़े की जमीन में रहने और अपनी रोजी-रोटी स्वयं चलाने के लिये आदेश दिया । रविदास जी की वाणी में गुरु की महिमा का बड़ा ही गुण-गान किया गया है तथा गुरु को परमात्मा का साकार रूप माना गया है । रविदास जी के अनुसार गुरु की सहायता द्वारा ही मनुष्य भवसागर को पार कर सकता है और परमात्मा से उनका मिलाप हो सकता है । संत रविदास के श्रीगुरुग्रंथसाहिब में 40 शब्द दर्ज हैं । एक स्थान पर उन्होंने कहा है–

तब रैदास विचारी बाता । गुरु समान कबीर बड़ भ्राता । ।

–कबीर परिचई ।

यह सम्भव है कि रविदास जी अपने जीवन के आरम्भिक काल में रामानन्द जी के सम्पर्क में आये हों और उन्हें गुरु मानते रहे हों तथा बाद में उन्होंने कबीरदास जी से दीक्षा ली हो । इस प्रकार रविदास जी ने एक पिछड़ी जाति में जन्म लेकर भी आध्यात्मिकता की उच्चतम चोटी पर पहुँचने का आदर्श स्थापित किया तथा निर्भीकतापूर्वक सभी जाति और सम्प्रदाय के लागों के बीच अपने प्रेम और भक्ति का उपदेश फैलाया । जो ब्राह्मण आरम्भ में उनका विरोध करते थे, उन्हें भी बाद में उनकी महिमा का बोध हुआ और बहुत से मुख्य ब्राह्मण श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनके चरणों में शीश झुकाने लगे । जैसे रविदास जी ने स्वयं कहा है–

मेरी जाति कुटबांठला ढोर ढींवता
नितहि बनारसी आस पासा ।
अब बिप्र परधान तिहिं करहिं डंडउति
तेरे नाम स रजाइ रविदासु दासा । श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृष्ठ 1293

मेरी जाति चमार है मैं मृत पशुओं को ढोने वाला चमार हूँ । बनारस के आसपास ही मैं मृत पशुओं का व्यवसाय करता हूँ । परन्तु अब ब्राह्मण भी मुझे दण्डवत् नमस्कार करते हैं ।

7. गुरु रविदास

1. **दुर्लभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै ।।**
राजे इंद्र समसरि गृह आसन बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै । ।रहाउ । ।
न बीचारिओ राजा राम को रस जिह रस अनरस बीसरि जाही । ।
जानि अजान भए हम बावर सोच असोच दिवस जाही । ।
इंद्री सबल निबल बिबेक बुधि परमारथ परवेस नहीं । ।2 । ।
कहीअत आन अचरीअत आन कछु समझ न परै अपर माइआ । ।
कहि 'रविदास' उदास दास मति, परहरि कोप करह जीअ दइआ । ।3 । ।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब 658)

पूर्व जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप यह दुर्लभ मानव-जीवन प्राप्त हुआ है, परन्तु अज्ञानता के कारण यह व्यर्थ बीता जा रहा है । यदि हमें राजा इन्द्र के समान महल और आसन भी प्राप्त हो जाये तो परमात्मा की भक्ति के बिना वह भला किस काम आ सकती है? यदि हम अपने प्रभु राम के रस में सराबोर नहीं हुए, जिस रस को पीकर अन्य रसों की सुधि भूल जाती है, तो हम अवश्य ही पागल हैं जो जानबूझ कर अनजान बने हुए हैं और ऐसी चीजों की सोच में दिन बिता रहे हैं जिनका विचार नहीं करना चाहिये । हमारी इन्द्रियाँ बलवान् हो गई हैं और विवेक-शक्ति कमजोर पड़ गई है जिससे हमारी बुद्धि में परमार्थी भाव का प्रवेश ही नहीं हो पाता । हम कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं, हम यह नहीं समझ पाते कि माया हमसे भिन्न है । रविदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आपके इस दास की बुद्धि में उदासी छा गई है । अब तो क्रोध को तजकर और इस जीवों पर दया करो ।

2. **नामु तेरो असनो नामु तेरो उरसा, नाम तेरा केसरो ले छिटकारे । ।**
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो,
घसि जपै नामु ले तूझहि कउ चारे । । 1 । ।

नामु तेरो दीवा नामु तेरो बाती नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे । ।
नामु तेरे की जोति लगाई, भइओ उजिआरो भवन सगलारे । । 2 । ।
नाम तेरो तागा नामु फूल माला, भार अठारह सगल जूठारे । ।
तेरो कीआ तुझहि किया अरपउ, नामु तेरा तुही चवर ढोलारे । । 3 । ।
दसअठा अठसठे चारे खाणी इहै वरतणि है सगल संसारे । ।
कहै 'रविदासु' नाम तेरो आरती सतिनाम है हरि भोग तुहारे । । 4 । ।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब 694)

हे प्रभु, मेरे लिये तुम्हारा नाम ही आरती और तीर्थस्नान है । परमात्मा के नाम के बिना पूजा-पाठ के सभी बहिर्मुखी विस्तार झूठे आडम्बर हैं । तुम्हारा नाम ही मेरे लिये आसन है, तुम्हारा नाम ही केसर चन्दन रगड़ने की सिल है तथा तुम्हारे नाम रूपी केसर को ही लेकर मैं तुम्हारे ऊपर छिड़कता हूँ । तुम्हारा नाम ही पानी है, तुम्हारा नाम ही चन्दन है तथा नाम के जप या सुमिरन द्वारा ही मैं नाम रूपी चन्दन को घिस कर तुम्हें लगाता हूँ । तुम्हारा नाम ही दीपक है, नाम ही बाती है और नाम ही तेल है जिसे लेकर मैं नाम रूपी दीपक में ढालता हूँ । तुम्हारे नाम की ही मैंने ज्योति जलाई है जिससे समस्त भवन में उजाला छा गया है । तुम्हारा नाम ही तागा है जिसमें पिरो कर मैंने नाम रूपी फूल-माला बनाई है । इस नाम की माला के अतिरिक्त देव-मूर्ति पर चढ़ाई जाने वाली अन्य वनस्पतियों की अठारह भार की माला जूठी है । तुम्हारे द्वारा ही रचित सामग्रियों को मैं तुम्हें क्या अर्पित करूँ? बस केवल तुम्हारे नाम का ही चँवर मैं तुम्हारे ऊपर झुलाता हूँ । 18 पुराणों तथा 68 तीर्थों में उलझा सारा संसार चार प्रकार की योनियों (अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्‌भिज) में चक्कर लगा रहा है । रविदास जी कहते हैं कि हे प्रभु, तुम्हारा नाम ही मेरे लिये आरती है और सच्चे नाम (सतनाम) का ही भोग मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ ।

3. **जो दिन आवहि सो दिन जाही । । करना कूचु रहनु थिरु नाही । ।**
संगु चलत है हम भी चलना । । दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना । ।1 । ।

किआ तू सोइआ जागु इआना । तै जीवनु जगि सचु करि जाना । । रहाउ । ।
जिनि जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावै । । सभ घट भीतरि हाटु चलावै । ।
करि बंदगी छाडि मैं मेरा । । हिरदै नामु सम्हारि सवेरा । ।2 । ।
जनमु सिरानो पंथु न संवारा । । सांझ परी दहंदिस अंधियारा । ।
कहि 'रविदास' निदानि दिवाने । । चेतसि नाही दनीआ फनखाने । ।3 । ।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब 793-794)

जो दिन आते हैं वे व्यतीत हो जाते हैं । इस संसार से सबको एक दिन कूच करना है । कोई भी यहाँ स्थिरता से रहने नहीं आता । हमारे सभी साथी चले जा रहे हैं और हमें भी चलना ही है । हमारी परमार्थी यात्रा बहुत दूर की है और मौत सिर पर मंडरा रही है । ऐसी हालत में, रे मूर्ख ! तू सोया क्यों पड़ा है ? जाग । क्या तूने इस जीवन और जगत को सत्य समझ रखा है ? जिस परमात्मा ने तुझे जीवन दिया है, वह तेरी जीविका का भी प्रबन्ध करता है । घट-घट में बैठा परमात्मा मानो हमारी सभी आवश्यक सामग्रियों का बाज़ार खोले हुए है । उस परमात्मा की भक्ति कर तथा ''यह मैं हू, यह मेरा है'' – इस प्रकार के अभिमान को छोड़ । जल्दी से जल्दी परमात्मा के नाम की शरण ले । तेरी जीवन बीत चला और अभी तक तू परमात्मा की राह पर नहीं आया ? जीवन की सन्ध्या के आते ही दसों दिशाएँ अंधकारमय हो जायेंगी । रविदास जी कहते हैं : ए पगले ! अंततः यह दुनियाँ नाशवान् है । तू चेतता क्यों नहीं ?

4. **जिहि कुल साधु बैसनो होइ । ।**
बरन अबरन रंकु नहीं ईसरु, बिमल बासु जानीऐ जगि सोइ । ।रहाउ । ।
ब्रहमन बैस सूद अरु ख्दत्री डोम चंडार मलेच्छ मन सोइ । ।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारे कुल दोइ । ।1 । ।
धंनि सु गाऊ धीन सो ठाऊ । धंनि पुनीत कुटंब सभ लोइ । ।
जिनि पीआ सार रसु तजे आन रस, होइ रस मगन डारे बिखु खोइ । ।2 । ।
पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि अउरू न कोई । ।
जैसे पुरैन पात रहै जल समीप 'रविदास' जनमे जगि ओइ । ।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब 858)

जिस कुल में कोई सच्चा प्रभु भक्त पैदा हो जाता है, वह उच्च वर्ण का हो या नीच का, राजा हो या रंक, उसकी पावन सुगन्धि सारे संसार में फैल जाती है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, डोम, चाण्डाल या म्लेच्छ मन वाला कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, वह परमात्मा के भजन से पवित्र हो जाता है । वह आप तो मोक्ष प्राप्त करता ही है, साथ ही साथ अपने दोनों वंशों (मातृवंश और पितृवंश) का भी उद्धार करता है । उस गाँव, उस स्थान और उस पवित्र परिवार के सभी लोग धन्य हैं जिनमें जन्म लेन वाला कोई व्यक्ति सभी अन्य सांसारिक रसों को त्याग कर प्रभु नाम के सार रस को पीता है और उस रस में निमग्न होकर संसार के सभी विषैले दुर्गुणों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) को भुला देता है । भले ही कोई पण्डित हो, शूरवीर या छत्रपति राजा हो, परन्तु भक्त की समानता कोई नहीं कर सकता । जैसे कमल का पत्ता सदा जल के समीप होते हुए भी जल से सर्वथा अछूता रहता है, वैसे ही भक्त-जन संसार में रहते हुए भी संसार से सदा निर्लिप्त रहते हैं । रविदास जी कहते हैं कि वैसे भक्तों का जन्म ही संसार में सफल है ।

5. **खटु करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदै नाहि ।।**
चरनारबिंद न कथा भावै सुपच तुलि समान ।।1।।
रे चित चेति चेति अचेत काहे न बालमीकहिं देख ।।
किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ, राम भगति बिसेख ।।रहाउ।।
सुआन सत्र अजातु सभ ते क्रिस्न लावै हेतु ।।
लोगु बपुरा किआ सराहै तीनि लोक प्रवेस ।।2।।
अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पास ।।
ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ किउ न तरहि 'रविदास' ।।3।।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब 1124)

यदि कोई षट् कर्म करने वाला व्यक्ति हो और उच्च कुल से संयुक्त भी हो, परन्तु उसके हृदय में प्रभुभक्ति न हो और उसे प्रभु के

चरण-कमलों की कथा न सुहाती हो तो उसे चाण्डाल-तुल्य मानना चाहिये । अरे अनाड़ी मन ! तू जल्दी होश में आ । तू उदाहरणस्वरूप बाल्मीकि ऋषि को देख कि वे अपनी रामभक्ति की विशेषता के फलस्वरूप किस नीची जाति से किस ऊँचे अमर पद पर पहुँचे । इसी प्रकार कुत्ते को मारने वाला सबसे नीच जाति का भंगी कृष्ण-प्रेम के कारण इतना महान् बन गया कि लोग उस बेचारे की क्या सराहना करेंगे, उसकी बड़ाई तीनों लोक में फैल गई । (वैश्या प्रेमी) अजामिल, (वेश्या) पिंगला (शिकारी) लुधिया और अभिशप्त गन्धर्व) कुंचर—इन सभी ने परमात्मा को प्राप्त कर लिया । रविदास जी कहते हैं कि जब ऐसी कुबुद्धि वाले प्राणी संसार सागर से पार उतर गये तो फिर प्रभुभक्ति और प्रेम द्वारा तू क्यों नहीं तरेगा ?

6. **तुम चंदन हम इरंड बापुरे, निकटि तुम्हारे बासा ।**
नीच विष तै ऊँच भए हैं, तुम्हरी बास सुबासा ।।
जाति भी ओछी पांति भी ओछी, ओछा कसब हमारा ।
तुम्हरी क्रिपा तैं ऊंच भए हैं, कहै 'रविदास' चमारा ।।

(श्री गुरुग्रंथसाहिब पृष्ठ 486)

हे प्रभु ! तुम चन्दन के सुगन्धित वृक्ष हो और हम बेचारे एरंड के गन्धहीन पेड़ हैं । परन्तु तुम्हारे निकट हमारा निवास है, अर्थात् हम तुम्हारी शरण में हैं । तुम्हारी सुगन्धि से सुवासित होकर हम अब गन्धहीन नीच वृक्ष से सुगन्धित उच्च वृक्ष बन गये हैं । रविदास जी कहते हैं कि मेरी जाति-पाँति नीची है, मेरा व्यवसाय भी नीचा है, परन्तु तुम्हारी कृपा के फलस्वरूप मैं ऊँचा बन गया हूँ ।

7. **अब कैसे छूटै नाम रट लागी ।। टेक ।।**
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी । जाकी अंग अंग बास समानी ।।
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा । जैसे चितवत चंद चकोरा ।।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती । जा की जोति बरै दिन राती ।।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा । जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ।।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा । ऐसे भक्ति करै रैदासा ।।

—बानी 86; वाणी 66

हे प्रभु ! अब तो नाम की रट लग गई है, यह भला अब कैसे छूट सकती है? हे प्रभु ! तुम यदि चन्दन हो तो मैं पानी हूँ जिसके अंग-अंग में चन्दन की सुगन्ध समाई हुई है । यदि तुम बादल हो तो मैं उसका प्रेमी मोर बना हुआ हूँ और यदि तुम चन्द्रमा हो तो मैं चकोर की भाँति तुम्हारी ओर टकटकी लगाये हुए हूँ । हे प्रभु ! यदि तुम दीपक हो तो मैं उसकी बाती हूँ जिसकी ज्योति दिन-रात जलती रहती है । हे प्रभु ! तुम यदि मोती हो तो मैं धागा हूँ और यदि तुम सोना हो तो मैं उसमें मिल कर एक हो जाने वाला सुहागा हूँ । रविदास जी कहते हैं कि हे प्रभु ! तुम यदि स्वामी हो तो मैं तुम्हारा दास हूँ । तुम्हारे लिये मेरी भक्ति ऐसी ही है कि मैं किसी भी प्रकार से तुम से पृथक् नहीं रह सकता ।

संत दादू दयाल

जीवन-परिचय

8. संत दादू दयाल

संत दादू दयाल के जन्म स्थान, जन्म तिथि, नाम जाति, माता-पिता, गुरु शिक्षा तथा मृत्यु काल के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक परस्पर विरोधी विचार व्यक्ति किए हैं। परन्तु साधारणतः यह माना जाता है कि दादू दयाल का जन्म 1544 ई० में हुआ था और मृत्यु 1603 ई० में हुई। कुछ लोगों का मत है कि दादू दयाल सभी को प्यार से भाई कहा करते थे। इसलिए लोगों ने उन्हें दादू कहना आरम्भ कर दिया।

एक बार की बात है कि दो ब्राह्मण जिज्ञासु दादू से दीक्षा लेने और उनका उपदेश सुनने के लिए उन्हें खोजते हुए आए। उन्होंने एक नंगे सिर वाले व्यक्ति को देखा। इस पर उन्होंने नंगे सिर पर ठोंग मारी और उससे दादू दयाल का पता पूछा। उसने दादू दयाल के घर का पता बता दिया। दादू दयाल घर पर नहीं थे। थोड़ी देर बाद जब वे घर पर पधारे तो ब्राह्मण हैरान रह गये कि यह वही व्यक्ति है जिसके सिर पर उन्होंने ठोंग मारी थी। इससे वे लज्जित हुए और क्षमा मांगने लगे।

दादू पंथियों के अनुसार दादू अपने गुरु वृद्धानन्द से 11 वर्ष की अवस्था में मिले थे जबकि वे अपने मित्रों के साथ एक तालाब पर खेल रहे थे। वे उस संन्यासी के पास गए और उन्हें नमस्कार किया जिस पर उन्होंने दादू दयाल के सिर पर हाथ रख दिया और दादू के शरीर में रूहानियत की एक लहर दौड़ पड़ी।

19 वर्ष की अवस्था में दादू ने अहमदाबाद से प्रस्थान किया और 6 वर्षों तक गुजरात और राजस्थान के बीच जगह-जगह भ्रमण करते हुए 25 वर्ष की अवस्था में सांभर पहुँचे जो राजस्थान के प्रसिद्ध नमक झील सांभर के किनारे बसा हुआ हैं वे सांभर में 12 वर्ष रहे। अजमेर का एक काजी जो सांभर के दौरे पर आया हुआ था, क़ुरान को अपने हाथ में लिए हुए दादू के पास गया और धमकाते हुए उनसे पूछा कि ख़ुदा को राम कहने का कुफ्र वे क्यों करते हैं। राम को पूजने वाला तो काफ़िर होता है। दादू जी ने अपनी बात नम्रता, पर दृढ़ता के साथ स्पष्ट करने की कोशिश की और काफ़िर का अर्थ यों बताया–

सो काफ़िर जो बोलै काफ़ । दिल अपनी नहिं राखे साफ़ ।
साईं को पहचाने नाहीं । कूड़ कपट सब उस ही माहीं । ।

इससे काज़ी और भी रुष्ट होकर अनाप-शनाप बकने लगा ।

दादू दयाल की दयालुता और क्षमाशीलता असीम थी । एक रात उनके आश्रम में एक चोर घुस गया । उसकी आहट से कुछ शिष्यों की नींद खुल गई और उन्होंने आवाज़ दी कि कौन है । कोई उत्तर न मिलने पर उन्हें संदेह होने लगा । दादू तुरन्त उठ गये और शिष्यों से कहा कि ''शोर न मचाओ ।'' धीमी आवाज़ में वे चोर से यह कहते हुए सुने गए कि ''तू जल्दी यहाँ से भाग जा, नहीं तो लोग तुझे पकड़ कर सज़ा देंगे ।'' दूसरे दिन सुबह वह चोर दादू के पास आया और फिर कभी चोरी न करने की शपथ ली ।

सांभर के बाद उन्होंने आमेर में अपना निवास बनाया । आमेर में उन्हें सम्राट् अकबर भी मिलने आया । अकबर ने दादू के साथ धर्म पर चर्चाएं की । अपने सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ निष्ठा के साथ ही अन्य धर्मों के प्रति उनकी महान् सहिष्णुता थी । दादू के ज्ञान से भरे शब्दों से सभी विद्वान् चकित थे । अतः उन्होंने जानना चाहा कि आखिर दादू ने कौन सी पुस्तक पढ़ी । दादू जी ने बताया कि सर्वशक्तिमान परमात्मा ने हमारे मस्तिष्क के अन्दर ही ज्ञान का समस्त भंडार रख छोड़ा है । जिससे सहज ही सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है ।

इस प्रकार दादू दयाल ने सब पर एक समान रुहानी अमृत वर्षा करते हुए निःस्वार्थ भाव से अपना जीवन यापन किया । जीवन के अन्तिम क्षण में भी आपने अपने जीवन की मर्यादा को बनाए रखा । स्नान के पश्चात् मृत्यु की राह देखते हुए गहरे ध्यान में लीन हो गये । दादू दयाल के शिष्यों ने संकीर्तन करना आरम्भ कर दिया तथा नश्वर शरीर पर एक चादर डाल दी । संकीर्तन के बाद जब चादर उठाई तो वहाँ पर सुगंधित फूलों का एक ढेर पाया गया । यह एक अवैदिक अवधारण है जो कि कबीर के विषय में पाई जाती है ।

8. संत दादू दयाल

1. **दादू दावा दूर कर निरदावे दिन काट ।**
केते सौदा करि गये, पंसारी का हाट ।।

संत दादू दयाल संसार के लोगों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे भाई ! हमें किसी भी वस्तु का दावा नहीं करना चाहिये और बिना दावे के अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये क्योंकि हमारा जीवन और यहाँ के पदार्थ नाशवान् एवं क्षणभंगुर हैं । वस्तुतः यह संसार पंसारी की दुकान के समान और यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना सौदा खरीद कर चला जाता है अर्थात् अपना-अपना पार्ट अदा करके यहाँ से कूच कर जाता है ।

2. **साईं संत संतोख दे, भाव भगत विश्वास ।**
सिदक सबूरी साँच दे माँगे दादू दास ।।

हे प्रभु ! मुझे सच्चा संतोष, प्रेम भक्ति और विश्वास दीजिए । इसके अतिरिक्त मुझे सच्चाई धैर्य सत्य भी प्रदान कीजिए यही दादू दास की माँग है । मैं आपका अनन्य भक्त हूँ तभी मैं आप से आध्यात्मिक जगत् मांगता हूँ न कि भौतिक ।

3. **बार-बार यहु तन नहीं, नर नारायण देह ।**
दादू बहुरि न पाइये, जन्म अमोलिक येह ।।

मानव शरीर को सर्वश्रेष्ठ योनि माना जाता है क्योंकि यह शरीर बार-बार नहीं मिलता है । संतों ने इसे नर नारायण के नाम से भी पुकारा है । दादू जी कहते हैं यह शरीर फिर नहीं मिलेगा । क्योंकि यह अमूल्य निधि है । अतः इसे व्यर्थ में नहीं बर्बाद करना चाहिये ।

4. **दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम ।**
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम ।।

यह संसार दुःखों का सागर है परन्तु सुखसागर प्रभु ही है । दादू जी कहते हैं कि बेकार के संसार को छोड़कर अपना ध्यान प्रभु

में लगाना चाहिये जोकि सुखसागर है। वस्तुतः आनन्द प्रभु का पर्यायवाची शब्द है और सच्चा आनन्द उसी के पास है न कि संसार के पास।

5. **दादू काया कारवीं, देखत हीं चलि जाइ।**
जब लग सांस सरीर में, राम नाम ल्यौ लाइ।।

दादू जी कहते हैं कि मानव शरीर एक सराय के समान है जहाँ पर काफिला ठहरता है। यह शरीर क्षणभंगुर और नाशवान् होने के कारण देखते-देखते ही समाप्त हो जाता है। परन्तु जहाँ तक हमारे शरीर में सांस है, हमें सदा प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिये क्योंकि अंत समय में यह ही हमारे साथ जाता है।

6. **काल कनक और कामिनी, परिहरि इन का संग।**
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक जोति पतंग।।

दादू जी कहते हैं कि मोह-माया और सुन्दरी के संग में सारा संसार जलकर समाप्त हो गया जैसे एक पतंगा दीपक की रोशनी में जल समाप्त हो जाता है। ये व्यक्ति के लिये काल के समान हैं।

7. **जीयें तेल तिलन्नि में, जीयें गंध फुलन्नि।**
जीयें माखण षीर में, ईयें रब रुहन्नि।।

जैसे तिलों में तेल, फलों में गंध, दूध में मक्खन होता है वैसे ही सब व्यक्तियों के हृदय में प्रभु विराजमान रहते हैं। उसकी अनुभूति भी केवल हृदय में होती है।

8. **(दादू) सब घटि में गोबिन्द है, संगि रहै हरि पास।**
कस्तूरी मृग में बसै, सूँघत डोलै घास।।

दादू जी कहते हैं कि प्रभु सब व्यक्तियों के हृदय में है और वह सबके पास सदा ही रहता है। जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में होती है परन्तु हिरण उसे घास में सूंघता फिरता है।

9. **साधू जन संसार में, भव जल बोहिथ अंग।**
दादू केते ऊधरे, जेते बैठे संग।।

दादू जी कहते हैं कि साधु संसार में ऐसे होते हैं जैसे जल में नाव होती है । कुछ व्यक्ति तो इन के संग से भवसागर से पार हो जाते हैं परन्तु कुछ इसमें बैठे ही रहते हैं । इन दोनों के लिये संतों का संग इसप्रकर कल्याणकारी सिद्ध होता है ।

10. **साधू जन संसार में, सीतल चंदन बास ।**
दादू केते उधरे, जे आये उनके पास ।।

साधु इस संसार में चंदन के वृक्ष की भाँति शीतल स्वभाव के होते हैं जोकि व्यक्ति इनके संग में आ जाता है वह भी तर जाता है । अर्थात् उनका संग उसी का कायाकल्प कर देता है ।

11. **देह रहै संसार में, जीव राम के पास ।**
दादू कुछ ब्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास ।।

व्यक्ति का शरीर तो संसार में रहे और उसका मन परमात्मा में लगा रहे । दादू जी कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के जीवन में दुःख, कष्ट आदि नहीं आते । ऐसे व्यक्ति की प्रभु स्वयं रक्षा करते हैं ।

12. **एक राम के नाम बिन, जिव की जलण न जाइ ।**
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ ।।

प्रभु नाम के बिना व्यक्ति के दुःख दूर नहीं हो सकता है । अनेक व्यक्ति और इसके अतिरिक्त अनेक उपाय करते-करते इस संसार से चले गये परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ ।

13. **पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता, किनहुँ न पाया पार ।**
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाँइ अधार ।।

विद्वान् लोग ग्रंथों का अध्ययन करके थक गये हैं । परन्तु किसी ने भी उस परमेश्वर का पार नहीं पाया है । मुनि जन भी कह-कह कर थक गये हैं । परन्तु दादू जी कहते हैं कि प्रभुनाम ही व्यक्ति को भवसागर से पार उतार सकता है ।

14. **जहाँ राम तहं मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम ।**
दादू महल बारीक है, द्वे को नाहीं ठाम ।।

जहाँ पर प्रभु है वहाँ पर मैं नहीं है और जहाँ मैं होती है वहाँ पर प्रभु नहीं होते । अर्थात् प्रभु एवं अभिमान कभी भी एक स्थान पर नहीं रह सकते हैं क्योंकि अभिमान प्रभुप्राप्ति में बाधा है । दादू जी कहते हैं कि यह शरीर रूपी महल इतना बारीक है कि इस में प्रभु और अभिमान ये दोनों नहीं समा सकते ।

15. **ज्यौं ज्यौं पीवै राम रस, त्यौं त्यौं बढ़ै पियास ।**
ऐसा कोई एक है, बिरला दादू दास ।।

ज्यों-ज्यों भक्त प्रभु रस पीता है त्यों त्यों उसकी प्यास बढ़ती जाती है । परन्तु दादू जी कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति तो कोई बिरला ही होता है जो प्रभु रस पीने को सदा आतुर रहता है ।

16. **जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ ।**
आसिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोइ ।।

जब तक भक्त अपने शीश की बाजी नहीं लगा देता तब तब उसे प्रभु से प्रेम नहीं हो सकता । जब प्रभु से प्रेम हो जाता है तो उसे मृत्यु का भी भय नहीं सताता । परन्तु ऐसा भक्त कोई बिरला ही होता है ।

17. **दादू इस संसार में, मुझ सा दुखी न कोइ ।**
पीव मिलन के कारणे, मैं जल भरिया रोइ ।।

दादू जी कहते हैं कि इस संसार में कोई भी व्यक्ति मेरे जैसा दुःखी नहीं है क्योंकि मैं उस परमपिता परमेश्वर की याद में जल भुन कर रो रहा हूँ। अर्थात् जीवात्मा परमात्मा को पाने के लिये सदा लालायित रहती है ।

18. **यह मन कागद की गुड़ी, उड़ि चढ़ी आकास ।**
दादू भीगै प्रेम जल, तब आइ रहै हम पास ।।

मानव मन काग़ज़ के पतंग के समान होता है और जैसे पतंग आकाश में उठ जाता है वैसे मन भी सदा संकल्पविकल्प होता रहता है । परन्तु जब यही मन प्रभु प्रेम में लग जाता है तो अपनी बाहर की भाग-दौड़ कर एकत्र होता है और अपना अभिमान त्याग कर

विनम्रता अपनाता है ।

19. **मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद ।**
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानंद ।।

जब मन प्रभु के प्रेम को पाकर आनन्दित हो जाता है तथा ईश्वर से साक्षात्कार कर लेता है तो दादू जी कहते हैं कि वह व्यक्ति पूर्णानन्द से तृप्त हो जाता है ।

20. **(दादू) कोइ दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाहि ।**
कोई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही माहिं ।।

कोई प्रभु दर्शन के लिये मथुरा जाता है कोई काशी जाता है और कोई द्वारिका जाता है परन्तु वह प्रभु तो हमारे सब के हृदय में विराजमान है ।

21. **तन नहिं तेरा धन नहिं तेरा, कहा रहयो इहिं लागि ।**
दादू हरि बिन क्यों सुख सौवे, काहे न देखै जागि ।।

दादू जी महाराज उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे मानव ! न ही यह शरीर तेरा है और न ही यह धन, तू इसे क्यों अपने साथ चिपकाए हुए है । क्योंकि मृत्यु के पश्चात् तन, धन यही पर छूट जायेंगे । अतः इस संसार में प्रभु के बिना कहीं भी सुख नहीं है । अतः सुखी रहने के लिये प्रभुशरण में आओ ।

22. **दादू पाया प्रेम रस, साधु संगति माहिं ।**
फिरि फिरि देखै लोक सब यह रज कहहूँ नाहिं ।।

दादू जी कहते हैं कि साधुओं की संगति में ही प्रेमरस की वर्षा होती है । सारे संसार में उसने जाकर देख लिया है । कहीं भी उसे प्रेमरस की अनुभूति नहीं हुई । अतः प्रेमरस की प्राप्ति के लिये सत्संग में जाना चाहिये ।

23. **(दादू) हिंदू लागे देहरै, मुसलमान मसीति ।**
हम लोक इक अलेप सौ सदा निरंतर प्रीति ।।

दादू जी कहते हैं कि हिन्दू मंदिर से और मुसलमान मस्जिद से चिपके

हुये हैं । परन्तु हमारा प्रेम तो केवल एक प्रभु से है जो सब के हृदय में रहता है ।

24. **दादू पाती प्रेम की विरला बाँचै कोइ ।**
वेद पुरान पुस्तकें पढै प्रेम बिना क्या होई ।।

दादू जी कहते हैं कि कोई बिरला पुरुष ही प्रभुप्रेम की पुस्तक पढ़ता है । परन्तु अधिकतर व्यक्ति वेद व पुराण की पुस्तकों को पढ़ते हैं । यदि हृदय में प्रेम नहीं है तो यह सब लाभप्रद नहीं हो सकता ।

25. **तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिंड प्राण ।**
मैं हूँ तेरा, तू है मेरा, यह दादू का ज्ञान ।।

दादू जी महाराज कहते हैं कि हे प्रभु ! यह मेरा तन, मन और प्राण तेरा ही दिया हुआ है । मैं तेरा हूँ और तू मेरा है । यही मेरा ज्ञान है । दादू जी ने प्रभु के प्रति यहाँ सम्पूर्ण समर्पण की भावना ो प्रकट किया है ।

26. **दादू दुनियाँ बाबरी मठियाँ पूजन ऊत ।**
जो आप नपूते मर गये, उनसे माँगे पूत ।।

दादू जी महाराज संसार के लोगों को उपदेश देते हुये कहते हैं कि इस संसार के लोग इतने पागल है कि वे क़ब्रों की पूजा भी करते हैं । यहाँ तक कि जो व्यक्ति स्वयं संतानहीन मर गये उन से ही पुत्र माँगते हैं अर्थात् इस संसार के लोग अंधविश्वासों में फँसे हुये हैं ।

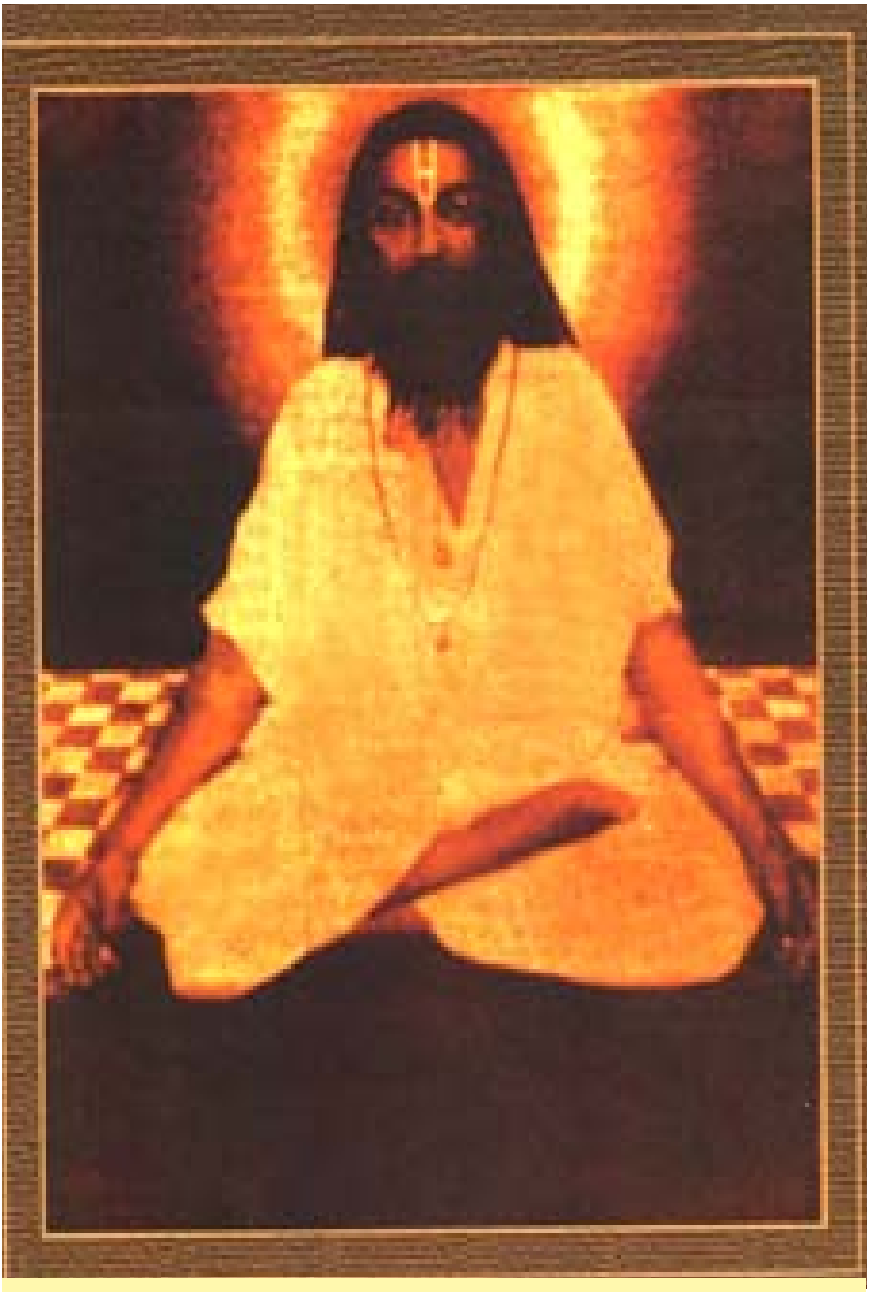

भक्त पलटू साहिब

जीवन-परिचय

9. भक्त पलटू साहिब

बहुत से अन्य संत-महात्माओं की तरह ही पलटू साहिब के जीवन के विषय में बहुत ही कम जानकारी मिलती है। उनके जीवन की घटनाएं अतीत के अंधकार में खो गई हैं। पलटू साहिब की जीवन काल 1710 ई० से 1780 ई० तक है। इन तिथियों के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं तथा निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं है।

पलटू साहिब अयोध्या निवासी थे। आम लोगों की यह धारणा है कि अयोध्या श्रीरामचन्द्र जी की नगरी है। परन्तु पलटू साहिब के समय इसका प्राचीन गौरव विलीन हो चुका था। प्राचीन तीर्थ स्थल होने के कारण यहाँ पर बड़े श्रद्धालु आया करते थे। पण्डे उनसे पूजा-पाठ के नाम पर बहुत सा धन लिया करते थे। अतः पलटू साहिब ने बहिर्मुखी भ्रमों के विपरीत अन्तर्मुखी अभ्यास की ओर विशेष ध्यान दिया।

इन्होंने एक दोहे में लिखा है कि पलटू अपने सतगुरु के बाग़ का वह फूल है जिसने चारों वर्णों के भेद-भाव समाप्त करके, प्रत्येक धर्म तथा जाति के लोगों के लिए प्रभु-भक्ति की एक रीति चलाई। जैसे—

चारि बरन को मेटि कै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोबिन्द के बाग़ में पलटू फूला फूल।।

पलटू साहिब कहते हैं कि संतों के पास सतनाम का वह अमूल्य धन होता है जिसको पाकर किसी दूसरे धन की आवश्यकता ही नहीं रहती। आप कहते हैं कि माया भी नाम की दासी है। जब नाम रूपी स्वामी वश में आ जाये तो माया रूपी दासी अपने आप ही वशीभूत हो जाती है। माया संतों के पीछे दौड़ती है परन्तु संत उसको दूर ही रखते हैं क्योंकि नाम में लीन हुए संत को किसी दूसरी वस्तु की इच्छा ही नहीं होती। उसके अन्दर सच्चा सन्तोष होता है तथा उसको इसमें से ही छत्तीस पदार्थों का स्वाद मिल जाता है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा तथा हाकिम नाम में लीन ऐसे सन्तों के आगे करबद्ध उपस्थित रहते हैं। वे उन्हें अनेक प्रकार की सेवा, भेंट देना चाहते हैं, परन्तु संत किसी से पाई तक नहीं लेते। वे माया से निर्लिप्त तथा निश्चिन्त होते हैं। उनके पास

कौड़ी तक भी न हो, तो भी वे शाहों के शाह होते हैं ।

पलटू साहिब ने भी बड़ी निडरता के साथ सच्ची आध्यात्मिकता का प्रचार किया । उन्होंने एक ओर जीवों को परमात्मा के मिलाप का परमात्मा द्वारा सृजन किया गया अन्तर्मुखी मार्ग दिखाया तथा दूसरी ओर उनको हर तरह के बाहरमुखी भ्रमों में से निकालने का प्रयत्न किया । आपने परमात्मा की प्राप्ति के लिए शब्द या नाम का मार्ग बताया तथा प्रत्येक प्रकार के कर्म-काण्ड का भी जोरदार खण्डन किया । आपने लोगों को समझाया कि वह परमात्मा तीर्थों और मूर्तियों में नहीं है । परन्तु लोग जगह-जगह भटकते फिरते हैं तथा सत्य से खाली हैं । जैसे–

सात पुरी हम देखिया देखे चारों धाम ।।
देखे चारों धाम सबन माँ पाथर पानी ।

कहा जाता है कि उनको कईं प्रकार से तंग किया गया परन्तु वे पूरी दिलेरी के साथ सत्य का प्रचार करते रहे । जब विरोधियों की किसी प्रकार कोई पेश न चली तो उन्होंने अवसर पाकर एक दिन कुटिया को आग लगा दी तथा पलटू साहिब को जीवित जला दिया । कितने आश्चर्य की बात है कि हम संसार के सच्चे हितैषियों तथा मानवता की सबसे अधिक निष्काम सेवा करने वाले संतों के साथ इस प्रकार का बर्ताव करते हैं ।

परन्तु जिस प्रकार स्वार्थी लोगों का अपना स्वभाव होता है, सन्तों की भी अपनी मर्यादा होती है । वे दया, क्षमा, शीतलता तथा प्रेम के पुंज होते हैं । संसार के इतिहास में कभी किसी पूर्ण संत ने कष्ट देने वालों तथा जान लेने वालों को श्राप नहीं दिया तथा उनका बुरा नहीं सोचा । वे ज्ञानस्वरूप होते हैं तथा सब में एक परमात्मा का प्रकाश देखते हैं । इसलिए वे शत्रु तथा मित्र सबके साथ एक जैसा प्यार करते हैं । पूर्ण सन्तों में से परोपकार तथा प्रेम ऐसे फूट कर निकलता है जिस प्रकार चन्दन में से सुगन्धि । वे प्रत्येक कष्ट सहकर भी सच्चे ज्ञान की सुगन्धि चारों ओर फैलाते रहते हैं ।

9. भक्त पलटू साहिब

1. **साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार ।।**
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ती में राजी ।
तजा सकल पकवान लिया दासी सुत भाजी ।।
जप तप नेम अचार करै बहुतेरा कोई ।
खाये सेवरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई ।।
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा ।
मरदा सब का मान सुपच बिनु घंट न बाजा ।।
पलटू ऊँची जाति कौ जनि कोउ करै हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार ।।

भावार्थ – पलटू साहिब उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रभु के दरबार केवल भक्ति एवं प्रेम का आदर है । वहाँ जाति-पाँति की कोई भी पूछताछ नहीं है । जो कोई किसी भी अवस्था में प्रभुभक्ति करता, वह प्रभु का रूप हो जाता है । क्योंकि प्रभु को भक्ति ही प्रिय है । श्रीकृष्ण ने राजा दुर्योधन का छप्पन प्रकार का भोजन त्याग कर विदुर जी का साग बड़ी रुचि से खाया था । चाहे कोई व्यक्ति कितना ही जप, तप, नितनेम आचार आदि क्यों न करें वह प्रभु को प्रिय नहीं है । श्रीराम ने शबरी के जूठे बेर बड़े चाव से खाकर अहंकारी ऋषियों एवं मुनियों का अहंकार तोड़ा था । युधिष्ठिर ने अश्वमेध किया था, परन्तु यज्ञ की सफलता स्वरूप आकाश में घंटा नहीं बजा । आकाश में घंटा तभी बजा जब नीच जाति के भक्त ने युधिष्ठिर के यहाँ भोजन ग्रहण किया था । अतः पलटू साहिब कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति को ऊँची जाति का होने का अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि अभिमान प्रभुप्राप्ति में बाधा होता है । प्रभु के दरबार में तो केवल भक्ति एवं प्रेम ही देखा जाता है ।

2. **साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ।।**
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाज़िर ।
अंदर धसि कै देखु मिलैगा साहिब नादिर ।।
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै ।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै ।।
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा ।
तीसौ रोजा रहे अंदर में सात रिकाबा ।।
दिल लामकान मं रब्ब को पावै पलटूदास ।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ।।

भावार्थ—हे मानव ! तू प्रभु प्रभु पुकारता रहता है इसलिये लिये मंदिर-मस्जिद भी जाता है । परन्तु वह तो तेरे हृदय में ही रहता है । वह सदा तेरे पास ही रहता । यदि तू उसे सच्चे दिल से याद करेगा तो वह प्रकट हो जायेगा । परन्तु तू कभी सच्चे हृदय से उसे पुकारता ही नहीं है । ध्यान द्वारा अपने अन्तर जाकर देख वह प्रभु वहाँ ही हाज़िर मिलेगा । तू अहंकार का पर्दा हटा दे तभी उस प्रभु का जलवा तुझे हृदय भी नजर आयेगा । ते बुरका उतार के तो देख ख़ुदा तुझे स्वयं दिखाई देने लगेगा । अज्ञान का पर्दा उठा दे तो ख़ुदा का दीदार होगा । प्रभुमिलन अपनी आत्मा से चढ़ाई कर दे अर्थात् सच्चे दिल व लगन से उसे याद कर । कृतघ्नता की झूठी जंजीर तोड़ दे । आगे पलटू साहिब कहते हैं इस प्रकार हे मानव ! तू अपनी हृदय में भी ख़ुदा का दीदार कर लेगा क्योंकि ख़ुदा है तो सर्वव्यापक परन्तु उसकी अनुभूति केवल हृदय में ही होती है ।

3. **यह तो घर हे प्रेम का खाला का घर नाहिं ।।**
खाला का घर नाहिं सीस जब धरै उतारी ।
हाथ पाँव कटि जाय करै ना संत करारी ।।
ज्यों ज्यों लागै घाव तेहुँ तेहूँ कदम चलावै ।
सूरा रन पर जाय बहुरि ना नियता आवै ।।

पलटू ऐसा घर मँहैं बड़े मरद जे जाहिं ।

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं ।।

भावार्थ—पलटू साहिब उपदेश देते हुये कहते हैं कि यह प्रेम का घर है क्योंकि खाला का घर नहीं है । प्रभु प्रेम का मार्ग कोई आसाान मार्ग नहीं है । इस मार्ग पर वही व्यक्ति चल सकता है सिर कुर्बानी करने के लिये तैयार हो । चाहे सच्चे संत के हाथ व पाँव क्यों न कट जाये फिर भी वह नहीं घबराता है । ज्यों-ज्यों उसे घाव या दुःख होते जाते हैं वह आगे-आगे ही बढ़ता चला जाता है । क्योंकि प्रभुभक्ति का मार्ग बड़ा कठिन है इनमें सहनशीलता एवं सुदृढ़संकल्प की परमावश्यकता होती हैं जैसे एक वीर सैनिक युद्ध में जाता है चाहे वह वापिस जीवित बच कर आये अथवा न आये परन्तु बड़ी बहादुरी से युद्ध करता है । अतः पलटू साहिब भक्तों को उपदेश देते हुये कहते हैं कि यह प्रभुप्रेम एवं भक्तमार्ग में वीर पुरुष ही जा सकता है । न कि साधारण व्यक्ति । यह प्रभुप्रेम व भक्तिमार्ग अत्यंत कठिन है क्योंकि खाला जी का घर नहीं है अर्थात् साधारण कार्य नहीं है । यह फूलों की सेज नहीं है अपितु काँटों का बिछोना है । अतः इस मार्ग का पथिक कोई बिरला पुरुष होता है ।

4. **उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग़ ।।**

तिस में जरै चिराग़ बिना रोगन बिन बाती ।

छह रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती ।।

सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै ।

बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वा को दरसावै ।।

निकसै एक अवाज़ चिराग़ की जोतिहिं माहीं ।

ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं ।।

पलटू जो कोई सुनै ता के पूरे भाग ।

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग़ ।।

भावार्थ – पलटू साहिब ने हमारे सिर को उल्टा कुंआ नाम से पुकारा है । जहाँ नाम का दीपक प्रत्येक प्राणी के अन्दर आँखों के पीछे उल्टा कुएँ में जलता है । कुएँ का तला नीचे की ओर परन्तु हमारे सिर का तला ऊपर की ओर है । इसमें बिना बाती और तेल के एक अलौकिक दीपक लगातार जल रहा है । परन्तु सच्चे सतगुरु से युक्ति जाने बिना यह दीपक दिखाई नहीं देता हैं यह दीपक छः ऋतु और बारह मास दिन रात सदा चलता ही रहता है । इस दीपक की ज्योति में से शब्द की अलौकिक छः ध्वनि उठ रही है । सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार सूरत की आँखों के पीछे एकाग्र करने समाधि की अवस्था में प्राप्त करने वाले व्यक्ति ही इसके अन्दर दीपक को देख सकता है । इस प्रकार वह परमानन्द प्रदान करने वाली दिव्य ध्वनि को भी सुन सकता हैं ऐसा कोई प्रभु का बिरला भक्त ही होता हैं इस दिव्य-ध्वनि को और कोई नहीं सुन सकता है । पलटू साहिब कहते हैं तो बिरला व्यक्ति इस ध्वनि को सुनता है वह बड़भागी है । अतः प्रत्येक व्यक्ति के सिर को उल्टा कुँआ कहा गया है जहाँ पर निरन्तर नाम का दीपक चल रहा है ।

5. **सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम ।।**
देखे चारो धाम सबन माँ पाथर पानी ।
करमन के बसि पड़े मुक्ति की राह भुलानी ।।
चलत चलत पग थके छीन भइ अपनी काया ।
काम क्रोध नहिं मिटे बैठ कर बहुत नहाया ।।
ऊपर डाला धोय मैल दिल बीच समाना ।
पाथर में गयो भूल संत का मरम न जाना ।।
पलटू नाहक पचि मुए सन्तन में है नाम ।
सात पुरी हम देखिया देखे चारों धाम ।।

भावार्थ– संत पलटू साहिब कहते हैं कि मैंने मूर्तियों की पूजा और तीर्थ-स्थानों का बहुत भ्रमण किया परन्तु कहीं भी प्रभुदर्शन न हुए। व्रत भी रखे, ग्रंथों का पाठ भी सुना, योग भी धारण किया, जप-तप भी किया, माला भी फेरी तथा षट्-दर्शन भी खोजे, परन्तु कुछ भी प्राप्त न हुआ। इसके विपरीत जब संतों की शरण ली तब सहज ही उस प्रियतम से मिलाप हो गया।

6. **तिरथ में बहुत हम खोजा, उहाँ तो नाहिं कुछ पाया।**
मूरत को पुजि पछिताने, नजर में नाहिं कुछ आया।।
मुए हम बर्त के करते, बेद को सुना चित लाई।
जोग औ जुगति करि थाके, सजन की खबर नहिं पाई।।
किया जप तप फेरि माला, खोजा षट दरस में जाई।
कोई ना भेद बतलावै, सबै सत्संग गुहराई।।
परे जब संत के द्वारे, संत ने आप सब कीन्हा।
दास पलटू जभी पाया, गुरु के चरन चित लाया।।

भावार्थ– संत पलटू साहिब कहते हैं कि लोगों को कई अन्य भ्रमों से निकालने का भी प्रयत्न किया। हिन्दुओं के मन्दिरों के द्वार-पूर्व की ओर तथा मुसलमानों की मस्जिदों के पश्चिम की ओर होते हैं। इसी प्रकार मुसलमान क़ब्रें तथा हिन्दू सममाधियाँ या मूर्तियाँ बनाते हैं। परन्तु जड़ वस्तुओं की पूजा और आराधना निरर्थक है। परमात्मा जिसको भी मिला है अन्दर मिला है। आप बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि जैसे मरा हुआ बैल घास नहीं खा सकता वैसे ही किसी जड़ वस्तु से कुछ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

7. **साहिब के दरबार में क्या झूठे का काम।**
पलटू दोनों न मिलै, कामी और अकाम।।

भावार्थ – पलटू साहिब उपदेश देते हुये कहते हैं कि प्रभु के समक्ष झूठ का

कोई काम नहीं है । वहाँ पर झूठ फरेब और रिश्वत नहीं चलती हैं जैसे संसार में कामी और निष्कामी व्यक्ति नहीं मिल सकते हैं । स्वार्थी परमार्थी व्यक्तियों की आपस में नहीं बनती अर्थात् वे आपस में नहीं मिल पाते । उसी प्रकार प्रभु के दरबार में झूठ नहीं चलता । वहाँ पर केवल शुद्ध हृदय व्यक्ति ही भक्ति व प्रेम द्वारा पहुँच सकता है ।

8. **ज्यों ज्यों रूठे जगत सब, मोर होय कल्यान ।**
पलटू बारन बाँकि है जो सिर पर भगवान ।।

भावार्थ – पलटू साहिब उपदेश देते हुए कहते हैं कि चाहे मेरे से सारा संसार नाराज क्यों न हो जाये । परन्तु फिर भी प्रभु मेरा भला ही करेंगे । आगे वे कहते हैं कि मेरा कोई भी व्यक्ति बाल भी बाँका नहीं कर सकता । क्योंकि मेरे सिर पर प्रभु का हाथ है । सच्चे प्रभुभक्त की स्वयं सारी आवश्यकताएं भगवान् पूर्ण कर देते हैं । क्योंकि उसकी रक्षा भी वही करते हैं क्योंकि उसने भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण कर दिया ।

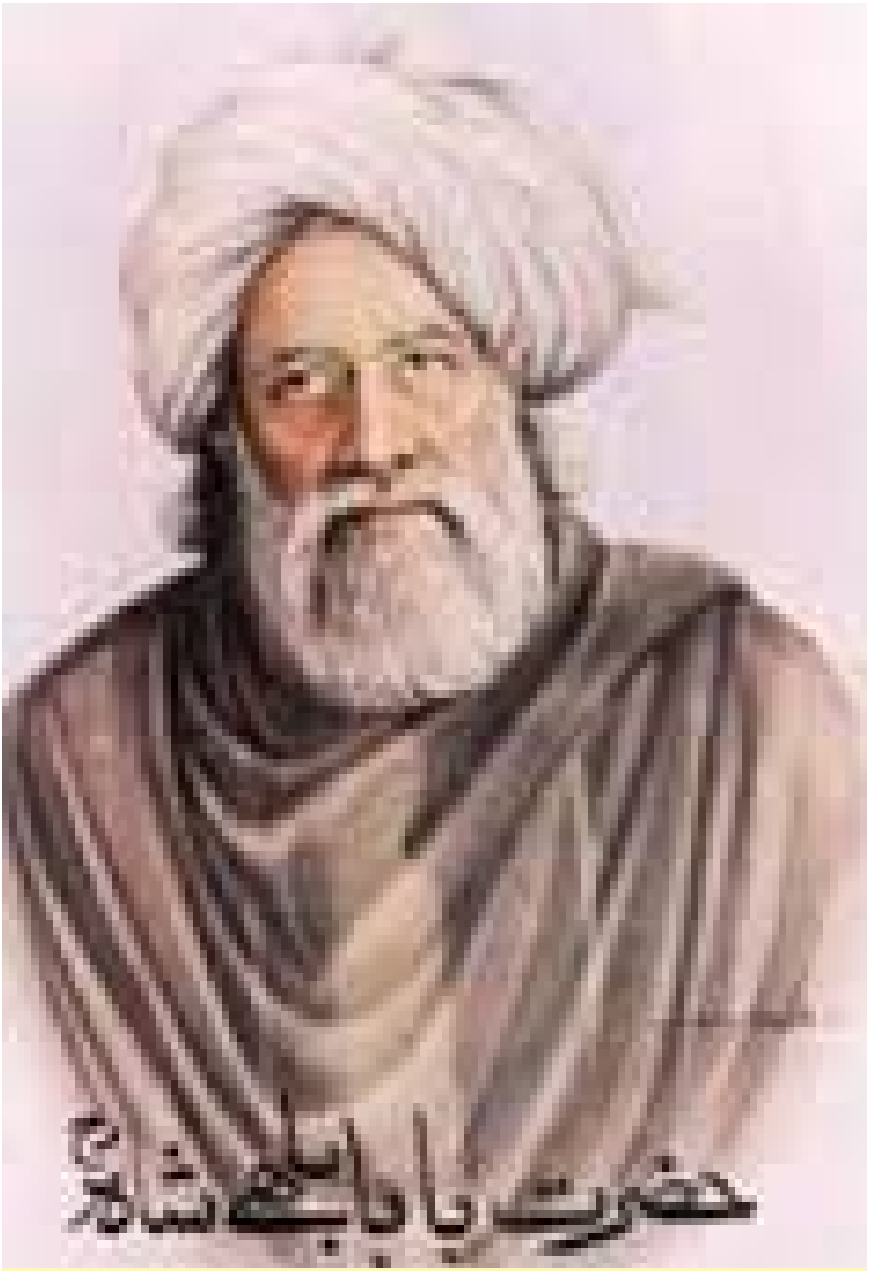

साईं बुल्लेशाह

जीवन-परिचय

10. साईं बुल्लेशाह

साईं बुल्लेशाह के जीवन काल के विषय में कई मतभेद हैं। परन्तु आपका समय सन् 1680 ई० से 1758 ई० तक माना जाता है। इनके पिता शाह मुहम्मद दरवेश को अरबी, फ़ारसी और क़ुरान का अच्छा ज्ञान था। आप आध्यात्मिक झुकाव वाले नेक दिल व्यक्ति थे। कहा जाता है कि परिवार में बुल्लेशाह के साथ उसकी अपनी बहन का सबसे अधिक स्नेह था, जिसने उन्हीं की तरह कुंआरी रह कर संयम और भक्ति से जीवन व्यतीत किया। स्पष्ट है कि बहन और भाई दोनों पर पिता के चरित्र का प्रभाव था। इनकी बौद्धिक और चारित्रिक विशेषताएँ के कारण ही इनकी गिनती उच्च कोटि के विद्वानों में होने लगी।

आपने बाहरमुखी कर्मकाण्ड के स्थान पर हृदय की सफाई और खुदा की बन्दगी पर जोर दिया है। इसी कारण आपको पंजाब का सूफी कवि कहा जाता है। आपके अनुसार नेकी और बदी एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। एक शाखा में कड़वा फल लगता है और दूसरी में मीठा फल। बुद्धिमत्ता कड़वा फल त्याग कर मीठा फल खाने में है। हजरत अनायत शाह के बुल्लेशाह को उपदेश देते हुए कहा था कि –

बुल्लया ! रब दा की पाना, ऐधरों पुटना ते ओधर लाना।

बुद्धिमान के लिये इशारा काफी होता है। बुल्लेशाह इस रहस्य को समझ चुके थे। वे रूहानियत के इस सार को समझ गये थे। वे जान गये थे कि यह कार्य पूर्ण सतगुरु की कृपा दृष्टि से ही सम्पन्न हो सकता है। 'बागे-औलिया-ए-हिन्द' में इस घटना को वर्णित किया गया है।

बुल्लेशाह का समय अद्भुत मस्ती में गुजरने लगा। सतगुरु कही संगति और उसके बताये हुए मार्ग की अमली साधना से बुल्लेशाह की रूहानी अवस्था दिन-प्रतिदिन बदलने लगी। अपनी काफी 'जो रंग रंगिया गूड़ा रंगिया मुरशद वाली लाली ओ यार' में बुल्लेशाह संकेत करता है कि सतगुरु ने मुझे लाल रूहानी रंग में रंग दिया है। मेरी आन्तरिक आँख खुल गई है, मेरे सब भ्रम दूर हो गये हैं और मुझ पर हक़ीक़त का नूर बरसने लगा है। मुर्शिद की दया से मुझे अन्तर में प्यारे प्रियतम दीदार हो गया है और मेरे लिये रब और मुर्शिद का भेद समाप्त हो गया है।

बुल्लेशाह की वाणी में इस दुःख भरी अवस्था के बड़े हृदय-स्पर्श वर्णन मिलते हैं। उसकी कई काफ़ियों में आत्मकथा जैसा पुट मिलता है। इन काफ़ियों के रचना काल के विषय में कोई पक्का दावा कर पाना कठिन है। परन्तु यह अभिव्यक्ति बुल्लेशाह की इस समय की मानसिक अवस्था की ही करती हुई प्रतीत होती है। इनमें विरह की नदी उछलती दिखाई देती है। भाव की ''तीव्रता, वास्तविकता, सोज़ और तड़प में ये काफ़ियाँ बेजोड़ हैं।'' निस्संदेह बुल्लेशाह की आत्मा सतगुरु की आत्मा के रंग में रंग गई और दोनों में कोई भेद न रहा।

बुल्लेशाह के लिए हिन्दू और मुसमलान के सभी झगड़े समाप्त हो गये और बुल्लेशाह को सब साधु ही साधु दिखाई देने लगे। उसके लिये कोई भी चोर या पराया न था। इस अवस्था को पाकर बुल्लेशाह प्रेम, क्षमा और दया की मूर्ति बन गया। वह समदर्शी बन गया और मित्र-शत्रु, भले-बुरे और हिन्दू-मुसलमान सबसे एक जैसा प्रेम करने लगा। उसके जीवन की एक घटना इस अवस्था को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है।

साईं बुल्लेशाह ऐसा पहुँचा हुआ दरवेश, कामिल फ़कीर और सच्चा आशिक़ था, जिसने मुर्शिद के इश्क़ द्वारा अल्लाह के इश्क़ की मंजिल तय की। उसके इश्क़ में तीव्रता, सोज़ और तड़प के साथ सिदक, कुर्बानी और त्याग था। उसने इश्क़ की वेदी पर जाति और विद्वता का चढ़ावा चढ़ाया और विरह की आग में जलते हुए भी गुरु में अपनी निष्ठा और विश्वास को पल भर के लिये भी डोलने नहीं दियां उसके जीवन की तरह उसकी वाणी इश्क़े-मिजाजी की अंगुली पकड़ कर इश्क़े-हक़ीक़ी तक पहुँचने का मार्ग दिखाती है जो संसार के सब सच्चे प्रभु-भक्तों का साँझा मार्ग है। तभी तो उन्हें यहाँ तक लिखा है–

मक्के गिआं गल मुकदी नाहीं जिचर दिलों न आप मुकाईए।
गंगा गिआं गल मुकदी नाहीं भवे सौ सौ गोते लाईए।।
गया गिआं गल मुकदी नाहीं भावे कितने पिंड भराईए।
बुल्लेशाह गल तां ही मुकदी, जद मैं नूं खड़े लुटाईए।।

10. साईं बुल्लेशाह

1. **इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा ए । टेक ।**
इक अलफ़ों दो तिन चार होए, फिर लख करोड़ हज़ार होए ।
फिर ओथों बाझ शुमार होए, हिक अलफ़ दा नुकता प्यारा ए ।
क्यों पढ़ना ए गड किताबां दी, सिर चाना ए पंड अज़ाबां दी ।
हुन होइउ शकल जलादां दी, अग्गे पैंडा मुशकल भारा ए ।
बन हाफ़ज़ हिफ़ज कुरान करें, पढ़ पढ़ के साफ़ जबान करें ।
फिर निअमत विच ध्यान करें, मन फिरदा ज्यों हलकारा ए ।
बुल्ला बी बुहड़ दा बोया सी, ओह बिरछा वड्डा जां होया सी ।
जद बिरछ ओह फ़ानी होया सी, फिर रहि गया बी अकारा ए ।
इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा ए ।

(फ़कीर मुहम्मद : कुल्लियात, 11)

भावार्थ – अलिफ़ से अभिप्राय परमात्मा से है । अरबी या फ़ारसी वर्णमाला में अल्लाह शब्द लिखने लगें तो पहला अक्षर अलिफ़ आता है । एक परमात्मा से ही सारी अनेकता पैदा हुई है । शिव शक्ति या माया और ब्रह्म तीन गुण, जलवायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश पाँच तत्त्व और इससे पैदा होने वाली अनेक सूरतों का उदय एक निरंकार से ही हुआ है । परमात्मा का मिलन सच्चे ज्ञान और सच्चे आनन्द का स्रोत है, धर्म ग्रंथों का रूहानी प्राप्ति का कोरा ज्ञान दुःखों की गठरी के समान है । तू यहाँ लोगों पर अत्याचार करता है, यह नहीं सोचता कि मौत के बाद कठिन घाटी से गुजरना पड़ेगा । क़ुरान शरीफ़ को मौखिक याद करने वाले को हाफ़िज कहते हैं । क़ुरान को बड़ी साफ जिह्वा से तीव्र गति में पढ़ता है परन्तु मन वश में नहीं । यह संसार के पदार्थों में जाता है और सन्देश वाहक के समान बाहर दौड़ता रहता है । जब संसार रूपी बढ़ का वृक्ष नष्ट हो जाता है तो इसका बीज वह निराकार परमात्मा फिर भी विद्यमान रहता है । इसी प्रकार शरीर के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती ।

2. **इक नुकते विच गल मुकदी ए । टेक ।**
फड़ नुकता छोड़ हिसाबां नूं, कर दूर कुफ़र दिआं बाबां नूं ।
लाह दोजख गोर अज़ाबां नूं, कर साफ दिले दिआं खवाबां नूं ।
गल एसे घर विच ढुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए ।
ऐवें मत्था जिमीं घसाईदा, लंमा पा महिराब दिखाईदा ।
पढ़ कलमा लोक हसाई दा, दिल अंदर समझ न लिआईदा ।
कदी बात सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए ।
कई हाजी बन बन आए जी, गल नीले जामे पाए जी ।
हज बेच टके लै खाए जी, भला एह गल कीहनूं भाए जी ।
कदी बात सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए ।
इक जंगल बहिरीं जांदे नीं, इक दाना रोज लै खांदे नी ।
बेसमझ वजूद थकांदे नी, घर आवण हो के मांदे नी ।
ऐवें चिल्हियां विच जिंद सुकदी ए, इक नुकते विच गल मुकदी ए ।
फड़ मुरशद आबद खुदाई ही, विच मस्ती बेपरवाही हो ।
बेखाहश बेनवाई हो, विच दिल दे खूब सफ़ाई हो ।
बुल्ला बात सच्ची कदों रुकदी ए, एक दुकते विच गल मुकदी ए ।

(फ़कीर मुहम्मद : कुल्लियात, 12)

भावार्थ – इस नुकते को पकड़ लें, शेष जो कुछ है उसको कुफ्र समझ कर त्याग दें । मृत्यु और नरकों का भय छोड़ दें और मन से हर प्रकार के संकल्प-विकल्प निकाल दें । सही बात हृदय रूपी घर को साफ करने की है । धरती पर माथा टेकना, लेट कर मेहराब को नमस्कार करने से क्या लाभ है? बाहर से कलमा पढ़ते हैं, परन्तु अन्दर न उसकी समझ आती है और न हृदय पर उसका प्रभाव होता है । इस प्रकार लोगों की हँसी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता । लोग हज करते हैं फिर हज का पुण्य बेच कर धन कमा लेते हैं । कुछ लोग वनों और समुद्रों में जाते हैं, कुछ प्रतिदिन एक दाने पर गुजर करते हैं, वे

अज्ञानी शरीर को दुःख देते हैं । वे शिथिल होकर घर लौटते हैं और चिल्हों में व्यर्थ ही जीवन बर्बाद करते हैं । आत्मा रूपी हीर रांझा रूपी सतगुरु के लिए व्याकुल है । हीर शिकायत करती है कि रांझा मुझे अप से दूर क्यों रखता है । वह स्वयं खेतों में भैंसे चराने चला जाता है परन्तु मुझे साथ नहीं ले जाता । भाव, वह प्रभु स्वयं दूसरे शिष्यों की ओर चला जाता है परन्तु मेरी ओर ध्यान नहीं देता । हे प्रभुभक्त ! तू किसी सच्चे गुरु या प्रभुभक्त का आसरा ले ले । चाहे तू ग़रीब है पर तेरा दिल साफ होना चाहिये । तभी तुझे प्रभु अनुभूति होगी ।

3. **बेद कुरानां पढ़ पढ़ थक्के, सजदे करदियां घस गए मत्थे ।**
न रब्ब तीरथ न रब्ब मक्के, जिस पाया तिस नूर अनवार । ।
फूक मुसल्ला भंन सुट लोटा, न फड़ तसबी कासा सोटा ।
आशिक कहिंदे दे दे होका, तरक हलालों खाह मुरदार ।
उमर गवाई विच मसीती, अन्दर भरिया नाल पलीती ।
कदे नमाज तौहीद न कीती, हुन की करनां एं शोर पुकार ।
इश्क़ भुलाया सजदा तेरा, हुन क्यों ऐवें पावें झेड़ा ।
बुल्ला हुंदा चुप बथेरा, इश्क़ करेंदा मारो मार ।
इश्क दी नवींउ नवीं बहार ।

(फ़कीर मुहम्मद : 'कुल्लियात', 76)

भावार्थ – साईं बुल्लेशाह उपदेश देते हैं कि संसार के व्यक्ति वेद एवं क़ुरान पढ़-पढ़ कर हार गये हैं । इसके अतिरिक्त मदिरों में मूर्तियों पर मत्थे टेक टेक कर उन्होंने मत्थे भी घिस लिये हैं परन्तु परमात्मा न तीर्थ में मिलता है न मक्के का हज करने से मिलता है । वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा जिसे भी मिलता है अपने हृदय ही में मिलता है । वह परमेश्वर तो सर्वव्यापक है परन्तु उसकी अनुभूति शुद्ध हृदय में ही होती है । हे मानव ! तू मुसल्ले को फूंक दे और लोटे को फैंक दे और तू शहरा का त्याग करके प्रेममार्ग को पकड़ ले । तूने सारी आयु

मस्जिद में व्यर्थ ही व्यतीत कर डाली क्योंकि अभी तक भी तेरा मन गंदगी से भरा पड़ा है । तूने कभी भी एकेश्वरवाद की प्रार्थना न की है । अब शोर मचा कर क्या करेगा । तूने प्रभु प्रेम को भुला दिया । अतः कभी भी उसके आगे दण्डवत् प्रणाम नहीं किया । अब तू व्यर्थ में क्यों झगड़ा करता है । साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि वह अपने मन को चुप करने का प्रयत्न करता है । परन्तु प्रभु प्रेम उसे चुप नहीं होने देता है अपितु उसके हृदय में प्रभु के प्रति प्रेम की नई बहार उत्पन्न होती है ।

4. **ना ख़ुदा मसीते लभदा, ना ख़ुदा विच काअबे ।**
ना ख़ुदा क़ुरान किताबां, ना ख़ुदा निमाजे ।।
ना ख़ुदा मैं तीरथ डिट्ठा, ऐवें पैंडे झागे ।
बुल्ला शाह जद मुरशद मिल गया, छुट्टे सब तगादे ।।

भावार्थ—साईं बुल्लेशाह उपदेश देते हुए कहते हैं ख़ुदा न तो मस्जिद में मिलता है और न ही वह मंदिर में मिलता है । वह क़ुरान और अन्य ग्रंथों में भी नहीं है । न ही वह निमाज पढ़ने से मिलता है । आगे वे कहते हैं कि मैंने ख़ुदा किसी भी तीर्थ पर नहीं देखा और व्यर्थ ही अपना कीमती समय बर्बाद किया । परन्तु जब साईं बुल्लेशाह को सच्चा गुरु मिल गया तो सारे झगड़े समाप्त हो गये । उसने ही बताया कि ख़ुदा की अनुभूति केवल सच्चे हृदय में ही होती है ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)